अथैकादशं काण्डम्

दशम काण्ड की समाप्ति 'वशा' सूक्त पर है। इस वशा=कमनीया वेदवाणी को अपनानेवाला 'ब्रह्मा' है—ब्रह्मवेत्ता। ज्ञान ही इसका भोजन—'ओदन'—है। ग्यारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त का ऋषि यह 'ब्रह्मा' ही है तथा देवता 'ओदन' है—ज्ञान का भोजन।

अथ चतुर्विंशः प्रपाठकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भाभुरिक्पङ्क्तिः** ॥

ब्रह्मौदन का पचन

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह॥ १॥

१. हे **अग्ने**=यज्ञाग्ने! **जायस्व**=तू हमारे घरों में प्रादुर्भूत हो। **इयम्**=यह **अदितिः**=अदीना देवमाता—दीनता से दूर रहनेवाली व दिव्य गुणों को धारण करनेवाली **नाथिता**=ऐश्वर्यवाली होती हुई (नाथ् ऐश्वर्ये), **पुत्रकामा**=उत्तम सन्तान की कामनावाली होकर **ब्रह्मौदनं पचति**=ज्ञान के भोजन का परिपाक करती है, अथवा घर में उसी भोजन को पकाती है, जोकि बुद्धिवर्धक होकर ज्ञानवृद्धि का कारण बनता है। घर में उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (क) घर में यज्ञाग्नि प्रज्वलित रहे, (ख) माता अदीनवृत्ति की हो व दिव्य गुणों को धारण करनेवाली हो, (ग) ऐश्वर्यवाली होती हुई यह स्वाध्यायशील हो तथा बुद्धिवर्धक सात्त्विक भोजन का ही घर में परिपाक करे, (घ) उसके अन्दर उत्तम सन्तान की प्राप्ति की कामना हो। २. **सप्तऋषयः**=(सप् to worship) प्रभु का पूजन करनेवाले (ऋष् to kill) व पूजन द्वारा वासना का विनाश करनेवाले, **भूतकृतः**=यथार्थ (सत्य) कर्मों को ही करनेवाले **ते**=गृहवासी जन **प्रजया सह**=सन्तानों के साथ **इह**=यहाँ—घर में हे अग्ने! **त्वा मन्थन्तु**=तेरा मन्थन करें। हम अरणि-मन्थन द्वारा यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके यज्ञों को करनेवाले हों।

भावार्थ—सन्तान की उत्तमता के लिए आवश्यक है कि १. घर में अग्निहोत्र नियम से हो—यज्ञमय वातावरण हो। २. माता अदीनवृत्ति की व दिव्यगुणों को धारण करनेवाली हो। ३. माता ऐश्वर्यवाली होती हुई उत्तम सन्तान की प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मौदन का परिपाक करे। ४. घर के लोग उपासना द्वारा वासना का विनाश करें—उत्तम कर्मों को करनेवाले हों। ५. सन्तानों के साथ मिलकर प्रतिदिन अग्निहोत्र करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाविराट्त्रिष्टुप्** ॥

धूम—सुवीर

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून्॥ २॥

१. हे **वृषणः**=अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले, **सखायः**=परस्पर प्रेम से चलनेवाले लोगो! तुम **धूमं कृणुत**=ऐसे सन्तान को जन्म दो जो शत्रुओं को कम्पित करनेवाला हो (धूञ् कम्पने), **अद्रोघ अविता**=द्रोहशून्य व रक्षा करनेवाला हो। **वाचम् अच्छ**=वेदवाणी की ओर

चलनेवाला हो। उत्तम सन्तान को जन्म देने के लिए आवश्यक है कि हम शक्ति का शरीर में ही सेचन करें तथा परस्पर प्रेम (सखित्व) से वर्तें। इसप्रकार हम नीरोग व निर्द्वेष होंगे तो हमारी सन्तान भी उत्तम होंगे। २. **अयम्**=यह सन्तान **अग्निः**=प्रगतिशील होता है, **पृतनाषाट्**=शत्रुसैन्य का मर्षण करनेवाला होता है, **सुवीरः**=उत्तम वीर होता है, **येन**=जिस सन्तान के द्वारा **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **दस्यून् असहन्त**=दस्युओं का पराभव करते हैं, अर्थात् घरों में दास्यव वृत्तियों को नहीं पनपने देते। सन्तान उत्तम हों, तो घर उत्तम बने रहते हैं।

भावार्थ—हम अपने में शक्ति का सेचन करनेवाले व परस्पर निर्द्वेषतावाले बनें तो हमारी सन्तान 'शत्रुओं को कम्पित करनेवाली, द्रोहशून्य, रक्षणात्मक वृत्तिवाली, ज्ञानरुचि, प्रगतिशील, शत्रुसैन्यसंहारक व सुवीर' होंगी। इन सन्तानों से हमारे घरों में कभी दास्यव वृत्तियों का प्रवेश नहीं होगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**चतुष्पदाशाक्वरगर्भाजगती** ॥

महते वीर्याय, ब्रह्मौदनाय पक्तवे

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्या॑य ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाऽजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ॥ ३॥

१. **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! तू **महते वीर्याय**=महनीय वीर्य के लिए—प्रशस्त पराक्रम के लिए—**अजनिष्ठाः**=प्रादुर्भूत हुआ है। हे **जातवेदः**=उत्पन्न ज्ञानवाले जीव! तू **ब्रह्मौदनाय पक्तवे**=ज्ञान के भोजन के परिपाक के लिए प्रादुर्भूत हुआ है। तूने शक्ति व ज्ञान का सम्पादन किया है। २. **ते**=वे **सप्त ऋषयः**=प्रभुपूजन करनेवाले (सप् to worship) व प्रभुपूजन द्वारा वासनाओं का संहार करनेवाले (ऋष् to kill) **भूतकृतः**=यथार्थ (सत्य) कर्मों को ही करनेवाले **त्वा अजीजनन्**=तुझे जन्म देनेवाले हुए। तू भी **अस्यै**=इस अपनी गृहपत्नी के लिए **सर्ववीरं रयिं नियच्छ**=सब वीर सन्तानोंवाले ऐश्वर्य को देनेवाला हो। गृहपति का यह कर्त्तव्य है कि संयत जीवन के द्वारा वह वीर सन्तानों को जन्म देनेवाला हो तथा उनके पालने के लिए पुरुषार्थ से आवश्यक ऐश्वर्य को जुटानेवाला बने।

भावार्थ—गृहपति को शक्तिशाली व ज्ञानप्रधान जीवनवाला बनना योग्य है। वह वीर सन्तानों से युक्त हो और ऐश्वर्य को घर में प्राप्त करानेवाला बने।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मचर्याश्रम में ज्ञान, गृहस्थ में अतिथियज्ञ

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान्देवान्यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्॥ ४॥

१. हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! तू **समिधा**=ज्ञानदीप्ति से **समिद्धः**=आचार्यों द्वारा दीप्त किया हुआ **समिध्यस्व**=दीप्त हो, अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में आचार्य तेरी ज्ञानाग्नि में 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' के पदार्थों के ज्ञान के रूपवाली तीन समिधाओं को डाले। इससे तेरी ज्ञानाग्नि खूब दीप्त हो और तू ज्ञान से चमक उठे। अब गृहस्थ में प्रवेश करने पर **विद्वान्**=ज्ञानी होता हुआ तू **इह**=यहाँ—घर पर **यज्ञियान् देवान्**=पूजनीय दिव्य वृत्तिवाले ज्ञानी पुरुषों को **आवक्षः**=प्राप्त करा—तू इनका आतिथ्य करनेवाला बन। २. **तेभ्यः**=उन यज्ञिय देवों के लिए **हविः श्रपयन्**=हवि को—पवित्र भोजनीय द्रव्य को (हु अदने) पकाता हुआ, हे **जातवेदः**=उत्पन्न ज्ञानवाला तू **इमम्**=इस अपने को **उत्तमं नाकम् अधिरोहय**=उत्तम दुःख से रहित मोक्षलोक में प्राप्त करानेवाला बन। ज्ञानी अतिथियों का आतिथ्य तेरे जीवन को पवित्र बनाये और तू मोक्ष-प्राप्ति

का अधिकारी हो।

भावार्थ—ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोकत्रयी के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करें। गृहस्थ में आने पर यज्ञियदेवों के सम्पर्क में रहें। उनका आतिथ्य करते हुए हम उनकी प्रेरणाओं से पवित्र जीवनवाले बनकर मोक्ष के भागी हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाविराट्त्रिष्टुप्** ॥

देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान्वो यो देवानां स इमां पारयाति॥ ५॥

१. हे मनुष्यो! **पुरा**=सृष्टि के प्रारम्भ में ही **यः**=जो **वः**=तुम्हारे लिए **त्रेधा भागः निहितः**=तीन प्रकार से भाग रक्खा गया है, एक तो **देवानाम्**=वायु आदि देवों का, दूसरा **पितॄणाम्**=पितरों का तथा तीसरा **मर्त्यानाम्**=अतिथिरूप मनुष्यों का, **तान् अंशान् जानीध्वम्**=उन अंशों को तुम समझो। मैं उन सब अंशों को **वः विभजामि**=तुम्हारे लिए प्राप्त कराता हूँ। मैं तुम्हें इन सब यज्ञों के लिए आवश्यक धन प्राप्त कराता हूँ। २. इनमें **यः**=जो **देवानाम्**=देवों का भाग है, अर्थात् जो वायु आदि की शुद्धि के लिए देवयज्ञ किया जाता है, **सः**=वह **इमाम् पारयाति**=इस प्रजा को भवसागर से पार करता है—सब कष्टों से मुक्त करता है। नीरोगता का कारण बनकर यह देवयज्ञ प्रजा के जीवन को सुखी करता है।

भावार्थ—प्रभु ने हमें जो धन प्राप्त कराया है वह देवयज्ञ, पितृयज्ञ व अतिथियज्ञ के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। इनमें देवयज्ञ वायुशुद्धि द्वारा प्रजा को रोग आदि कष्टों से पार करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**उष्णिक्** ॥

'मात्रा (बलम्)'

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु॥ ६॥

१. **अग्ने**=हे प्रगतिशील जीव! तू **सहस्वान्**=शत्रुमर्षक बलवाला है। **अभिभूः**=शत्रुओं को अभिभूत करनेवाला, **इत्**=सचमुच **अभि असि (भवसि)**=शत्रुओं को पराभूत करता है। तू **द्विषतः सपत्नान्**=द्वेष करनेवाले इन शत्रुओं को **नीचः न्युब्ज**=नीचे पादाक्रान्त कर दे (उब्ज आर्जवे, अत्र उपसर्गवशाद् अधोमुखीकरणम् अर्थः—सा०)। २. जीवन में शत्रुओं को पराभूत करने का मूलभूत उपाय सब कार्यों को माप-तोलकर करना है। विशेषकर भोजन में तो मात्रा आवश्यक ही है। यह मात्रा ही उपनिषद् के 'मात्रा बलम्' इन शब्दों में बल की संस्थापक है। **इयम्**=यह **मीयमाना**=सदा मापी जाती हुई **च मिता**=और मपी हुई **मात्रा**=मात्रा **ते**=तेरे **सजातान्**=साथ उत्पन्न होनेवालों को **बलिहृतः कृणोतु**=तेरे लिए बलि (कर) देनेवाला करे, अर्थात् ये सब सजात तेरे अधीन हों। 'मात्रा' के नियम का पालन करना हमें औरों से अधिक शक्तिशाली बनाता है। राजा मात्रा में कर लेता है तो आभ्यन्तर व बाह्य उपद्रवों का शिकार नहीं होता। इसी प्रकार हम 'खाने व बोलने' में मात्रा के नियम का पालन करते हुए व्याधियों व आधियों से पीड़ित नहीं होते।

भावार्थ—'मात्रा' के नियम का पालन करते हुए हम शत्रुओं को अभिभूत करनेवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शक्तिरक्षण व स्वर्ग

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्या य।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति॥ ७॥

१. हे अग्ने! **सजातैः साकम्**=अपने समान उत्पत्तिवालों के साथ **पयसा सह**=(क्षत्रं वै पयः, श० १२।७।३।८) क्षत्र (बल) के साथ **एधि**=तू निवास करनेवाला हो। **एनाम्**=इस भूमि को **महते वीर्याय**=महान् पराक्रम के लिए **उदुब्ज**=उन्नत कर। २. **ऊर्ध्वः**=उन्नत होता हुआ तू **नाकस्य विष्टपम्**=दुःख से असम्भिन्न लोक में **अधिरोह**=अधिरूढ़ हो, **यम्**=जिस लोक को **'स्वर्गः लोकः'** **इति**=स्वर्गलोक इसप्रकार **वदन्ति**=कहते हैं।

भावार्थ—हम शक्ति का वर्धन करते हुए उन्नत होने का ध्यान करें। यह शक्ति का रक्षण ही हमें उन्नत करके 'स्वर्गलोक' में स्थितिवाला करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

यज्ञ व स्वर्गलोक

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥ ८॥

१. **इयम्**=यह पुरोवर्तिनी **मही**=देवयजनभूमि **चर्म**=आस्तीर्यमाण अजिन को **प्रतिगृह्णातु**=स्वीकार करे। हम इस देवयजनभूमि पर मृगचर्म बिछाकर प्रभु के ध्यान व यज्ञ में प्रवृत्त हों। **देवी पृथिवी**=यह देवतारूप पृथिवी **सुमनस्यमाना**=मन को शोभन करती हुई अनुग्रह बुद्धियुक्त हो। इसपर किये जानेवाले ध्यान व यज्ञ हमें शुभ मनवाला बनाएँ। २. **अथ**=अब ध्यान, यज्ञ आदि द्वारा शुभ मनवाले होते हुए हम **सुकृतस्य लोकं गच्छेम**=पुण्य के लोक को प्राप्त हों। हमारा यह लोक पुण्यों का लोक बने।

भावार्थ—इस पृथिवी पर ध्यान व यज्ञादि उत्तम कर्मों को करते हुए हम शुभ लोक को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**शाक्वरातिजागतगर्भाजगती** ॥

शत्रुसंहार व प्रजोन्नति

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून्यजमानाय साधु।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह॥ ९॥

१. हे यज्ञशील पुरुष! तू **एतौ**=इन **सयुजा**=अवहनन (कूटने के) कर्म में साथ-साथ व्याप्रियमाण **ग्रावाणौ**=अश्मवत् दृढ़तर ऊखल और मूसल को **चर्मणि**=अवहननार्थ आस्तीर्ण चर्म पर **युङ्ग्धि**=स्थापित कर। अब **यजमानाय साधु अंशून् निर्भिन्धि**=इस यज्ञशील पुरुष के लिए यागनिर्वतक व्रीहिकणों को सम्यक् तुषरहित कर (**उलूखलमुसलयोः ग्रावत्वेन रूपणात् व्रीहयः सोमांशुत्वेन रूप्यन्ते**), यज्ञ के लिए हविर्द्रव्यों को तैयार कर। २. ऊखल व मूसल में व्रीहिकणों को कूटती हुई गृहपत्नी से पति कहता है कि **अवघ्नती**=इस अवहनन कार्य को करती हुई तू उनको भी **निजहि**=नष्ट कर, **ये**=जोकि **इमां पृतन्यवः**=इस मातृभूमि पर सेना द्वारा आक्रमण की कामनावाले होते हैं। जिस प्रकार **उद् भरन्ती**=तू मूसल को ऊपर उठाती है, उसी प्रकार **प्रजां ऊर्ध्वं उदूह**=प्रजा को ऊपर स्थापित कर। प्रजा को उन्नत (श्रेष्ठ) स्थान प्राप्त करा।

भावार्थ—जिस प्रकार यज्ञ के लिए हविर्द्रव्यों को ऊखल में कूटते हैं, इसी प्रकार हम शत्रुओं को कूटनेवाले बनें। जैसे मूसल को ऊपर उठाया जाता है, इसी प्रकार हम अपनी प्रजाओं को उन्नत करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**पुरोऽतिजगतिविराड्जगती** ॥

त्रयः वराः

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि॥ १०॥

१. हे **वीर**=वीर्यवन् अध्वर्यो! तू **सकृतौ**=(सह-कृतौ) मिलकर कार्य करनेवाले इन **ग्रावाणौ**=ऊखल व मूसल को **हस्ते गृहाण**=हाथ में ले, अर्थात् यज्ञ के लिए हविद्रव्यों को तैयार करने के लिए सन्नद्ध हो। **ते यज्ञियाः देवाः**=वे यज्ञशील देव—पूजनीय ज्ञानी पुरुष-**यज्ञम् अगुः**=यज्ञ में आएँ और तेरे इस यज्ञ को सम्यक् सम्पन्न करें। २. **त्रयः वराः**=यजमान से वरयितव्य (प्रार्थनीय) तीन ही पदार्थ हैं। एक तो 'कर्मसमृद्धि', दूसरी उसकी फलभूत 'ऐहिकी समृद्धि' (Prosperity) तथा 'आमुष्मिकी समृद्धि' (मोक्ष)। हे यजमान! **त्वम्**=तु **यतमान् वृणीषे**=जिन वरों को प्रार्थित करता है, **ते**=तेरे लिए **ताः समृद्धीः**=उन समृद्धियों को (कर्मसमृद्धि, ऐहिकी समृद्धि, आमुष्मिकी समृद्धि) **इह**=इस यज्ञ में **राधयामि**=संसिद्ध करता हूँ। यह यज्ञ इष्टकामधुक् तो है ही।

भावार्थ—हम यज्ञसामग्री को सिद्ध करें। ज्ञानी ऋत्विज् हमारे यज्ञों में उपस्थित हों। हमें इन यज्ञों द्वारा कर्मसमृद्धि के साथ ऐहिकी व आमुष्मिकी समृद्धि प्राप्त हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

धीतिः-जनित्रम्

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ॥ ११॥

१ हे यज्ञशील पुरुष! **इयम्**=यह यज्ञशीलता व वासनाराहित्य ही **ते**=तेरा **धीतिः**=सोमपान बनता है—यज्ञशीलता से ही तू सोम का रक्षण कर पाता है। **इदम् उ ते जनित्रम्**=निश्चय से यह सोमपान ही तेरी शक्तिविकास का साधन होता है। **त्वाम्** तुझे यह **शूरपुत्रा**=अपने पुत्रों को शूर बनानेवाली **अदितिः**=अदीना देवमाता—वेदवाणीरूप माता-**गृह्णातु**=अनुगृहीत करे या तुझे ग्रहण करनेवाली हो। तू सदा इसकी गोद में निवास करे। २. **ये**=जो **इमां पृतन्यवः**=इसके प्रति संग्राम की कामनावाले हों, अर्थात् इसको विहत करनेवाली वृत्तियाँ हों, उन्हें **परापुनीहि**=दूर करनेवाला हो—उन वृत्तियों को हृदय से दूर कर दे, जिस प्रकार व्रीहि से तुष को पृथक् कर देते हैं, इसप्रकार उत्तम जीवनवाला बनकर **अस्यै**=इस अपनी पत्नी के लिए **सर्ववीरं रयिम्**=वीर सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य को **नियच्छ**=प्राप्त करा।

भावार्थ—यज्ञशील बनकर हम सोम का रक्षण करें। सुरक्षित सोम हमारी शक्तियों के विकास का कारण बने। इस शक्ति के विकास के लिए ही हम स्वाध्याय-विरोधी सब बातों को छोड़कर स्वाध्यायशील बनें। यह स्वाध्याय ही तो हमें वासनाओं का शिकार होने से बचाएगा। अब हम सद्गृहस्थ बनकर वीर सन्तानों व ऐश्वर्य को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उपश्वसे-द्रुवये

उपश्वसे द्रुवयै सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि॥ १२॥

१. **उपश्वसे**=(उपश्वस Sounding, roaring) प्रभु के नामों के उच्चारण में तथा **द्रुवये**=(द्रुवयः a measure) माप में—प्रत्येक क्रिया को माप-तोल कर करने में—माप-तोलकर खाने आदि की क्रियाओं में **यूयं सीदत**=तुम आसीन होओ, अर्थात् तुम प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करो तथा खान-पान आदि क्रियाओं को बड़ा माप-तोलकर करो तथा **यज्ञियासः**=यज्ञिय वृत्तिवाले बनकर **तुषैः**=तुच्छ वृत्तिवाले पुरुषों से—तुषों के समान निःसार पुरुषों से **विविच्यध्वम्**=अपने को पृथक् करनेवाले होओ। सदा सत्संग में स्थित होनेवाले बनो। २. इसप्रकार जीवनवाले बनकर हम **श्रिया**=श्री के दृष्टिकोण से **सर्वान् समानान्**=सब समान जन्मवाले पुरुषों को **अति स्याम**=लांघ जाएँ। मैं **द्विषतः**=द्वेष करनेवाले शत्रुओं को **अधस्पदं पादयामि**=पाँवों तले रौंद डालता हूँ (पादयोरधस्तात् क्षिपामि)

भावार्थ—प्रभुस्तवन से पृथक् न होते हुए हम भौतिक वस्तुओं का प्रयोग एकदम माप-तोलकर करें। तुच्छवृत्ति के पुरुषों के संग में न उठें-बैठें, औरों से अधिक श्रीवाले हों और शत्रुओं को पादाक्रान्त कर सकें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

नारी का कार्यों में लगे ही रहना

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद्भराय।
तासां गृह्णीताद्यतमा यज्ञिया असन्विभाज्य धीरीतरा जहीतात्॥ १३॥

१. हे **नारि**=गृहकार्यों का प्रणयन करनेवाली गृहपत्नि! तू **परेहि**=(परा इहि) कार्यवश बाहर अवश्य जा, परन्तु **क्षिप्रं पुनः एहि**=शीघ्र ही फिर लौटने की कर—सहेलियों में ही गप्पें न मारती रह। उन्हीं की गोष्ठी में न बैठी रह, चूँकि **अपां गोष्ठः**=कर्मों का समूह **भराय**=भरण करने के लिए **त्वा अध्यरुक्षत्**=तेरे सिर पर आरूढ़ है। तेरे सिर पर गृहकार्यों का बोझ विद्यमान है—उन सब कर्त्तव्यों को भी तो तुझे निभाना है। २. **तासाम्**=उन कर्मों में **यतमाः यज्ञियाः असन्**=जितने यज्ञिय (पवित्र) कर्म हैं, उनको तू **गृह्णीतात्**= ग्रहण कर, उन कर्त्तव्यों के पालन में यत्नशील हो। **धीरी**=बुद्धिमती तू **विभाज्य**=अच्छे व बुरे कर्मों को अलग-अलग करके **इतराः**=जो शुभेतर अशुभ कर्म हैं उन्हें **जहीतात्**=छोड़ दे।

भावार्थ—गृहपत्नी कार्यवश घर से बाहर जाए भी तो शीघ्र ही लौट आये, क्योंकि उसके सिर पर तो कर्मों का बड़ा भार लदा है। यह यज्ञिय कर्मों को स्वीकार करे और बुद्धिमती होती हुई अशुभ कर्मों का परित्याग कर डाले।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सुपत्नी-प्रजावती

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन्यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय॥ १४॥

१. **शुम्भमानाः**=शोभनालंकारों व उत्तम गुणों से युक्त **इमाः योषितः**=ये नारियाँ **आ अगुः**=घरों में प्राप्त हुई हैं। हे **नारि**=गृहकार्य प्रणेत्रि! तू **उत्तिष्ठ**=उठ—आलस्य को परे फेंककर कार्यों

में लग। **तवसं रभस्व**=शक्तिशाली पति का आलिंगन करनेवाली बन। २. तू **पत्या सुपत्नी**=इस पति से उत्तम पतिवाली बन। **प्रजया प्रजावती**=प्रजा से प्रशस्त प्रजावाली हो। **त्वा**=तुझे **यज्ञः आ अगन्**=यज्ञ समन्तात् प्राप्त हो—तू सदा यज्ञशील हो। **कुम्भम्**=(क+उम्भ् पूरणे) तु सुख का पूरण करनेवाले कार्य को ही **प्रतिगृभाय**=प्रतिदिन ग्रहण करनेवाली हो।

भावार्थ—शुभ गुणों से अलंकृत गृहिणी आलस्य को छोड़कर घर के कार्यों में व्यापृत रहे। उसका शक्तिशाली पति से सम्पर्क हो। यह उत्तम पति व प्रशस्त सन्तानोंवाली हो। यज्ञशील हो। सुख का पूरण करनेवाले कार्यों को ही स्वीकार करे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

गातुवित्—वीरवित् (यज्ञः)

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु॥ १५॥

१. हे नारि! **एताः**=इन **ऋषिप्रशिष्टा**=(ऋषिः मन्त्रः) वेदमन्त्रों द्वारा उपदिष्ट **अपः**=कर्मों को **आभर**=सब प्रकार से धारण करनेवाली हो। यह कर्म वह है **यः**-जोकि **पुरा**=सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्रभु द्वारा **वः**-तुम्हारे लिए **ऊर्जः**=बल व प्राणशक्ति का **भागः**=अंश **निहितः**=रक्खा गया है। कर्म ही तो तुम्हारी शक्ति को स्थिर रक्खेगा। कर्म छोड़ा और जीर्णता आई (Rest किया rust लगा)। २. **अयं यज्ञः**=यह यज्ञात्मक कर्म **वः**=तुम्हारे लिए **गातुवित्**=स्वर्ग-मार्ग का प्रापक है, **नाथवित्**=प्रभु को व ऐश्वर्य को प्राप्त करानेवाला है (नाथ=ऐश्वर्य), **प्रजावित्**=यह उत्तम शक्तियों के विकास (सन्तानों) को प्राप्त करानेवाला है, **उग्रः**=तेजस्वी है, **पशुवित्**=उत्तम गवादि पशुओं को प्राप्त करानेवाला है। यह यज्ञ **वीरवित् अस्तु**=उत्तम वीर सन्तानों को प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—नारी वेदोपदिष्ट यज्ञात्मक कर्मों में व्यापृत रहे। इससे शक्ति बनी रहेगी और जीर्णता न आएगी। यह यज्ञ स्वर्ग का मार्ग है, प्रभु को प्राप्त करानेवाला है। यह उत्तम प्रजा-(शक्ति-विकास)-वाला, उत्तम पशुओंवाला व वीर सन्तानोंवाला है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

आर्षेयाः, दैवाः, तपिष्ठाः

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम्।
आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु॥ १६॥

१. हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **यज्ञियः चरुः**=(चरुः ओदनः—श० ४।४।२।१) यज्ञरूप (पूजनीय) प्रभु से प्राप्त होनेवाला यह ब्रह्मौदन (ज्ञान का ओदन) **त्वा अधि अरुक्षत्**=तुझपर अधिरूढ़ हो—तू ब्रह्मौदन प्राप्त करने को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझ। यह **शुचिः**=जीवन को पवित्र बनानेवाला है, **तपिष्ठः**=अत्यन्त दीप्त है। इस ब्रह्मौदन से मानवजीवन पवित्र व दीप्त बनता है। **तपसा**=तप के द्वारा—तपस्वी जीवन के द्वारा—भोगों में एकदम अनासक्त जीवन के द्वारा—**एनं तप**=इस ब्रह्मौदन को अपने में दीप्त कर। २. **आर्षेयाः**=(ऋषिर्वेदः, तस्य इमे) वेद (ज्ञान) के प्रति रुचिवाले, **दैवाः**=देव प्रभु के उपासक **तपिष्ठाः**=तपस्वी जीवनवाले व्यक्ति **अभिसंगत्य**=एकत्र होकर—चारों ओर से सभा में सम्मिलित होकर—**इमं भागम्**=इस भजनीय वेदज्ञानरूप चरु को **ऋतुभिः**=अपनी-अपनी नियमित गतियों के द्वारा **तपन्तु**=दीप्त करनेवाले हों। 'आर्षेय, दैव, तपिष्ठ' लोग ही पुरुषार्थ के द्वारा इस ब्रह्मौदन (यज्ञिय चरु) का परिपाक कर पाते हैं।

भावार्थ—हम ज्ञान-प्राप्ति को ही अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझें। यह हमारे जीवन को पवित्र व दीप्त बनाता है। तप के द्वारा ही हम ज्ञानदीप्त बनते हैं। ज्ञानरुचिवाले, उपासक व तपस्वी बनकर हम सभा में एकत्र होकर, पुरुषार्थी होते हुए, इस भजनीय ज्ञान का सेवन करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥

ज्ञानरुचिता व स्वर्ग-निर्माण

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः।
अदुः प्रजां बहुलान्पशून्नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्॥ १७॥

१. **शुद्धाः**=शुद्ध चरित्रवाली **पूताः**=पवित्र मनवाली **इमाः योषितः**=ये स्त्रियाँ **यज्ञियाः**=यज्ञशीला हैं। **आपः**=कर्मों में व्याप्त होनेवाली अतएव **शुभ्राः**=शुद्ध व दीप्त जीवनवाली ये **चरुम् अवसर्पन्तु**=ब्रह्मौदन—ज्ञान-भोजन—के प्रति गतिवाली हों। ये खाली समय को ज्ञान-प्राप्ति में ही लगाने का ध्यान करें। २. ये गृहिणियाँ **नः**=हमारे लिए **प्रजाम्**=उत्तम सन्तान को तथा **बहुलान् पशून्**=दुग्धादि बहुत पदार्थों को प्राप्त करानेवाले—बहुत-से गवादि पशुओं को **अदुः**=दें। **ओदनस्य पक्ता**=ज्ञान के भोजन का परिपाक करनेवाला यह गृहपति **सुकृताम् लोकम्**=पुण्यकर्मा लोगों के लोक को **एतु**=प्राप्त हो। इनका घर स्वर्गतुल्य बने।

भावार्थ—पवित्र जीवनवाली स्त्रियाँ कर्मों में व्याप्त रहें—खाली समय को ज्ञान-प्राप्ति में लगाएँ। इस जीवन में ये उत्तम सन्तानों व उत्तम पशुओं को प्राप्त करेंगी। ज्ञानरुचि-गृहपति घर को स्वर्ग बनानेवाला होगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**अतिजागतगर्भापरातिजागतीविराडतिजगती** ॥

स्वर्ग-मार्ग

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम्॥ १८॥

१. **ब्रह्मणा शुद्धाः**=वेदज्ञान से शुद्ध जीवनवाले, **उत**=और **घृतेन पूताः**=मलों के क्षरण द्वारा पवित्र हुए-हुए, **सोमस्य अंशवः**=सोमशक्ति को शरीर में विभक्त करनेवाले, **तण्डुलाः**=(तडि विध्वंसे) वासनाओं का विध्वंस करनेवाले **इमे**=ये पुरुष **यज्ञियाः**=यज्ञमय जीवनवाले हैं। २. प्रभु आदेश देते हैं कि **अपः प्रविशत**=कर्मों में प्रवेश करो—क्रियाशील जीवनवाले बनो। **चरुः**=यह ब्रह्मौदन **वः प्रतिगृह्णातु**=तुम्हारा ग्रहण करे, अर्थात् तुम्हें ज्ञान-प्राप्ति का व्यसन-सा लग जाए। **इमं पक्त्वा**=इस ज्ञान-भोजन को परिपक्व करके तुम **सुकृतां लोकं एत**=पुण्यकर्मा लोगों के लोक में—स्वर्ग में प्राप्त होओ।

भावार्थ—हमें चाहिए कि हम वेदज्ञान द्वारा जीवन को शुद्ध बनाएँ, मलक्षरण द्वारा पवित्र जीवनवाले हों। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रक्खें, वासनाओं का विध्वंस करके यज्ञशील हों। क्रियामय जीवनवाले होकर ज्ञान-प्राप्ति में लगाववाले हों। यही मार्ग है स्वर्ग प्राप्त करने का।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञानरुचि सम्पन्न वंश

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाऽहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि॥ १९॥

१. हे ब्रह्मौदन=ज्ञान के भोजन! तू **महता महिम्ना**=अपनी महनीय महिमा से हमारे जीवन में **उरुः प्रथस्व**=खूब फैल। **सहस्रपृष्ठः**=(पृष्ठ सेचने) तू शतशः सुखों का सेचन करनेवाला हो।

हमें **सुकृतस्य लोके**=पुण्य के लोक में स्थापित कर। २. हमारे वंश में **पितामहाः**=दादा-परदादा आदि **पितरः**=हमारे रक्षक—सात पीढ़ियों के लोग तथा **प्रजा**=हमारे पुत्र **उपजा**=पुत्रों के पुत्र भी सात पीढ़ी तक तथा **पंचदशः अहम्**=इनके बीच में पन्द्रहवाँ मैं **ते पक्ता अस्मि**=हे ब्रह्मौदन! तेरा पकानेवाला हूँ, अर्थात् हमारे वंश में सभी ज्ञान की रुचिवाले हों।

भावार्थ—हमारे वंश में पूर्वज व अवरज सभी वंश में ज्ञान की रुचिवाले हों। यह ज्ञान हमारी महिमा का वर्धक होता है, शतशः सुखों का सेचक होता है तथा सुकृत के लोक में हमें स्थापित करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**अतिजागतगर्भापराशक्वराचतुष्पदाभुरिग्जगती** ॥

ब्रह्मौदनः=देवयानः

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान्बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव॥ २०॥

१. **ब्रह्मौदनः**=यह ज्ञान का भोजन **सहस्रपृष्ठः**=सहस्रों सुखों का सेचन करनेवाला है। **शतधारः**=शत-वर्षपर्यन्त—आजीवन हमारा धारण करनेवाला है। **अ-क्षितः**=(न क्षितं यस्मात्) इससे कभी हमारा विनाश नहीं होता। **देवयानः**=यह देव की प्राप्ति का मार्ग है। **स्वर्गः**=जीवन को सुखमय व प्रकाशमय बनानेवाला है। २. हे ब्रह्मौदन! मैं **अमून्**=उन अपने शत्रुओं को **ते आदधामि**=तेरी अधीनता में स्थापित करता हूँ। वस्तुतः ज्ञानरुचिता होने पर ये काम-क्रोध आदि शत्रु अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं। **प्रजया**=मेरी शक्तियों के विकास के हेतु से **एनान् रेषय**=इन शत्रुओं को नष्ट कर डालिए। **मह्यम्**=मुझ **बलिहाराय**=बलि प्राप्त करानेवाले के लिए—बलिवैश्वदेवादि यज्ञों को करनेवाले के लिए यह ब्रह्मौदन **मृडतात् एव**=अनुग्रह ही करनेवाला हो। ज्ञान के द्वारा मेरा जीवन सुखी हो।

भावार्थ—ज्ञान हमारे जीवनों को आनन्दमय बनाता हुआ हमें प्रभु की ओर ले-चलता है। यह जीवन को प्रकाशमय बना देता है। यह ज्ञान हमारे शत्रुओं को नष्ट करे, हमारे विकास के लिए इन कामादि शत्रुओं का विनाश आवश्यक है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**विराड्जगती** ॥

उदय

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम्।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि॥ २१॥

१. हे पक्वौदन पुरुष—ज्ञान के भोजन का परिपाक करनेवाले पुरुष! तू **वेदिं उत् एहि**=यज्ञभूमि के प्रति उत्कर्षेण प्राप्त होनेवाला हो। **प्रजया**=अपने सन्तानों के साथ **एनान्**=इस यज्ञवेदि को **वर्धय**=तू बढ़ानेवाला हो—यज्ञवेदी की शोभा को बढ़ा। सन्तानों के साथ मिलकर यज्ञ कर। **नुदस्व रक्षः**=राक्षसी भावों को परे धकेल दे। **एनाम्**=इस यज्ञवेदि को **प्रतरम्**=प्रकृष्टतर रूप में **धेहि**=धारण कर। २. प्रभु से प्रेरित हुआ-हुआ उपासक प्रार्थना करता है कि मैं **श्रिया**=श्री के दृष्टिकोण से **सर्वान् समानान् अति स्याम**=एकसमान जन्मा पुरुषों को लाँघ जाऊँ और **द्विषतः**=द्वेष के कारणभूत काम-क्रोध आदि को **उधस्पदं पादयामि**=पाँव तले रौंद डालता हूँ।

भावार्थ—हम सन्तानों के साथ यज्ञवेदि की शोभा को बढ़ानेवाले बनें। राक्षसी भावों को दूर धकेल दें। सर्वाधिक श्रीवाले हों और काम-क्रोध आदि शत्रुओं को पादाक्रान्त कर लें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अनमीवा (विराज)

अ॒भ्याव॑र्तस्व प॒शुभिः॑ स॒हैनां॑ प्र॒त्यङे॑नां दे॒वता॑भिः स॒हैधि॑।
मा त्वा॒ प्राप॑च्छ॒पथो॒ मा॑भि॒चा॒रः स्वे क्षेत्रे॑ अनमी॒वा वि रा॑ज॥ २२॥

१. हे ब्रह्मौदन (ज्ञान के भोजन)! **एनाम्**=इस गृहपत्नी को **पशुभिः सह अभ्यावर्तस्व**=गौ आदि पशुओं के साथ प्राप्त हो। यह गृहिणी गौ आदि का पालन भी करे और स्वाध्याय भी अवश्य करे तथा **एनाम्**=इसे **देवताभिः सह**=यष्टव्य देवों के साथ **प्रत्यङ् एधि**=तू आभिमुख्येन जाता हुआ हो, अर्थात् यह देवयज्ञ आदि यज्ञों को भी करे और ज्ञान के भोजन का परिपाक भी करे—यह स्वाध्यायशील भी हो। २. इस स्थिति में **त्वा**=तुझे **शपथः मा प्रापत्**=आक्रोश मत प्राप्त हो—तू अपशब्द बोलनेवाली न हो, तेरे लिए कोई अपशब्द न कहे। तुझे **अभिचारः मा**=हिंसार्थ की जानेवाली क्रियाएँ भी प्राप्त न हों। तू किसी की हिंसा के लिए कोई कर्म न कर। **स्वे क्षेत्रे**=अपने इस घर में व शरीर में **अनमीवा विराज**=रोगरहित हुई-हुई दीप्त जीवनवाली बन।

भावार्थ—गृहपत्नी स्वाध्याय को न छोड़ती हुई गौ आदि पशुओं की सेवा करे—देवयज्ञादि यज्ञों को करनेवाली हो, कभी अपशब्द कहनेवाली व हिंसाकर्म में प्रवृत्त न हो। इसप्रकार घर में नीरोग व दीप्त जीवनवाली बने।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

हृदयरूप वेदि

ऋ॒तेन॑ त॒ष्टा मन॑सा हि॒तैषा ब्र॑ह्मौद॒नस्य॒ विहि॑ता॒ वेदि॒रग्रे॑।
अं॒स॒द्रीं शु॒द्धामुप॑ धेहि नारि॒ तत्रौ॑द॒नं सा॑दय दै॒वाना॑म्॥ २३॥

१. **'यन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दँस्तस्माद् वेदिर्नाम'** (श० १।२।५।१०) हृदय में प्रभु का दर्शन व प्राप्ति होती है, अतः हृदय ही वेदि है। यह **वेदिः**=हृदयरूप वेदि **ऋतेन तष्टा**=ऋत के द्वारा तनूकृत—सम्यङ् निर्मित—होती है। सत्य से ही यह शुद्ध बनी रहती है। **मनसा**=मनन के द्वारा **एषा**=यह **हिता**=धारण की जाती है। इसका मुख्य कार्य मनन ही है। यह **अग्रे**=सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु द्वारा **ब्रह्मौदनस्य विहिता**=ब्रह्मौदन की बनाई गई है। प्रभु ने 'अग्नि' आदि ऋषियों के हृदय में इस ब्रह्मौदन (ज्ञान-भोजन) की स्थापना की, अतः यह हृदयवेदि ब्रह्मौदन की वेदि कहलाती है। २. हे **नारि**=गृह को उन्नतिपथ पर ले-चलनेवाली गृहिणि! तू इस वेदि को **शुद्धाम्**=राग-द्वेष आदि मलों से शून्य तथा **अंसद्रीम्**=(अंसत्रम्=अंहसस्त्राणम्—नि० ५।२६) अंहस् (पाप) का द्रावण करनेवाली—पाप को अपने से दूर भगानेवाली—निष्पाप बनाकर **उपधेहि**=प्रभु की उपासना में धारण कर—शुद्ध निष्पाप हृदय से प्रभु की उपासना में प्रवृत्त हो। **तत्र**=उस शुद्ध हृदयवेदि में **दैवानाम्**=सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि सब देवों के **ओदनम्**=ज्ञानरूप भोजन को **सादय**=(आसादय) प्राप्त कर।

भावार्थ—हम हृदय को ऋत के द्वारा शुद्ध बनाएँ, मनन के द्वारा इसका धारण करें, इसे ब्रह्मौदन के लिए बनाई गई वेदि समझें। इसे शुद्ध व निष्पाप बनाकर प्रभु की उपासना करते हुए ज्ञान प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

'नर व नारी' ज्ञान संचेता बनें

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन्।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्यैनं चिनोतु॥ २४॥

१. स्वाध्याय को ज्ञानयज्ञ कहा जाए तो वाणी उस यज्ञ का 'स्रुच' बनती है (a wooden ladle)। **अदितेः**=अदीना देवमाता इस वेदज्ञान का यह **द्वितीयाम्**=दूसरा **हस्ताम्**=(हस् to brighten up) चमकता हुआ **स्रुचम्**=चम्मच है (वाग् वै स्रुचः—श० ६।३।१।८)। यह वाणीरूप चम्मच वह चम्मच है **यां एताम्**=जिस वाणीरूप चम्मच को **सप्त ऋषयः**=प्रभु का पूजन करनेवाले व वासनाओं का संहार करनेवाले (सर्प to worship, ऋष् to kill) **भूतकृतः**=यथार्थ कर्मों को करनेवाले लोग **अकृण्वन्**=अपने अन्दर सम्पादित कराते हैं। इस वाणीरूप चम्मच द्वारा ही वे ज्ञानरूप घृत की आहुति हृदयरूप वेदि में प्राप्त कराते है। २. गृहपत्नी से कहते हैं कि **सा**=वह **दर्विः**=(दृ विदारणे) वासनाओं को विदीर्ण करनेवाली तू **ओदनस्य**=इस ब्रह्मौदन के **गात्राणि विदुषी**=अङ्गों को जानती हुई **वेद्याम्**=हृदयवेदि में **एनम्**=इस ब्रह्मौदन को **अधिचिनोतु**=आधिक्येन संचित करनेवाली हो। तू भी खूब ही ज्ञान को प्राप्त करनेवाली बन।

भावार्थ—घर में पुरुष भी 'सप्त ऋषि व भूतकृत्' बनकर वाणी द्वारा ज्ञान को प्राप्त करे तथा गृहपत्नी भी वासनाओं को विदीर्ण करनेवाली बनकर ज्ञान का संचय करे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

आर्षेय पुरुषों का अहिंसन

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान्प्र सीद।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन्प्राशितारः॥ २५॥

१. **शृतम्**=परिपक्व **त्वा**=तुझ **हव्यम्**=अदन करने के योग्य ब्रह्मौदन को **दैवाः**=देव (प्रभु) के उपासक **उपसीदन्तु**=समीपता से प्राप्त हों। प्रभु के उपासकों को यह दिव्य परिपक्व ज्ञान प्राप्त होता है। हे ब्रह्मौदन! तू **अग्नेः**=उस अग्रणी प्रभु से **निःसृप्य**=निकलकर **पुनः**=फिर **एनान्**=इन उपासकों को **प्रसीद**=प्राप्त हो। प्रभु के उपासक हृदयस्थ प्रभु से ज्ञान प्राप्त करते हैं। २. **सोमेन**=शरीर में सुरक्षित सोमशक्ति द्वारा **पूतः**=पवित्र हुआ-हुआ, हे ब्रह्मौदन! तू **ब्रह्मणाम्**=इन ज्ञानियों के **जठरे**=जठर में—इनके अन्दर **सीद**=आसीन हो। शरीर में सुरक्षित सोम ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है और दीप्त ज्ञानाग्नि में ज्ञान पवित्र हो जाता है। **ते प्राशितारः**=वे ब्रह्मौदन को खानेवाले **आर्षेयाः**=(ऋषिः वेदः, तस्य इमे) ज्ञान के उपासक लोग **मा रिषन्**=हिंसित न हों।

भावार्थ—प्रभु के उपासक परिपक्व ज्ञान को प्राप्त करते हैं—इन्हें अन्तःस्थ प्रभु से ज्ञान प्राप्त होने लगता है। शरीर में सुरक्षित सोम से ज्ञान की पवित्रता होती है। ब्रह्मौदन को खानेवाले ये ज्ञानभक्त पुरुष वासनाओं से हिंसित नहीं होते।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**विराड्जगती**॥

सोमरक्षण तथा ज्ञानी ब्राह्मणों का आतिथ्य

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान्ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि॥ २६॥

१. हे **राजन् सोम**=शरीर में सुरक्षित होने पर शरीर की शक्तियों को दीप्त करनेवाले सोम (वीर्य)! **एभ्यः**=इन सबके लिए, **यतमे**=जितने **सुब्राह्मणाः**=उत्तम ब्रह्म के उपासक लोग **त्वा**

उपसीदान्-तेरी उपासना करें, अर्थात् तुझे शरीर में सुरक्षित रखने के लिए यत्न करें, उन सबके लिए **संज्ञानम्** सम्यक् ज्ञान को **आवप**-(निधेहि—सा०) प्राप्त करा। सोमरक्षण के द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके हम संज्ञानवाले बनें। २. एक गृहपत्नी संकल्प करती है मैं **सुहवा**-शोभन आह्वानवाली होती हुई **ब्रह्मौदने**-ज्ञान के भोजन के निमित्त **तपसः अधिजातान्**-तप के द्वारा विकसित ज्ञानवाले **आर्षेयान्**-सदा (ऋषौ भवान्) ज्ञान में निवास करनेवाले **ऋषीन्** (ऋष् to kill) वासना को विनष्ट करनेवाले इन लोगों को **जोहवीमि**-पुकारती हूँ। इनका आतिथ्य करती हुई इनसे ज्ञान की प्रेरणाओं को प्राप्त करती हूँ।

भावार्थ—हम शरीर में सोम का रक्षण तथा घर में ज्ञानी ब्राह्मणों का आतिथ्य करते हुए ज्ञान प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**अतिजागतागर्भाभुरिग्जगती** ॥

'शुद्ध, पवित्र, यज्ञिय' युवतियाँ

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे॥ २७॥

१. **इमाः**-ये **योषितः**-स्त्रियाँ **शुद्धाः**-शुद्ध जीवनवाली, **पूताः**-पवित्र मानस भावनावाली व **यज्ञियाः**-यज्ञशीला हैं। इन्हें **ब्रह्मणाम्**-ज्ञानियों के **हस्तेषु**-हाथों में **पृथक्**-अलग-अलग **प्र सादयामि** प्रकर्षेण बिठाता हूँ—स्थापित करता हूँ। एक का विवाह एक के ही साथ करता हूँ। एक युवति को एक युवक का ही जीवनसखा बनाता हूँ, २. **यत् कामः**-जिस कामनावाला होकर **अहम्**-मैं **वः** तुम्हें **इदम् अभिषिञ्चामि**-इस अभिषेक क्रियावाला करता हूँ **सः मरुत्वान् इन्द्रः**-वह प्राणोंवाला—प्राणसाधना करनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष **मे इदं ददात्**-मेरे लिए इस कामना को देनेवाला हो। पिता पुत्री को गृहस्थ में इसीलिए अभिषिक्त करता है कि वह सन्तान को जन्म देनेवाली बने। यदि उसे जीवन-साथी (पति) प्राणशक्ति सम्पन्न व जितेन्द्रिय प्राप्त होता है, तो वह अवश्य उत्तम सन्तान को जन्म देनेवाली बनती है।

भावार्थ—पिता अपनी कन्याओं को 'शुद्ध, पवित्र, यज्ञशील' बनाने का प्रयत्न करे। बड़ा होने पर उन्हें ज्ञानी पुरुषों के हाथों में अलग अलग सौंपे। इनके पति प्राणसाधक व जितेन्द्रिय होते हुए उत्तम सन्तान को जन्म देनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

स्वर्गः पन्थाः

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुघा म एषा।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः॥ २८॥

१. **इदं मे ज्योतिः**-यह मेरा ज्ञान का प्रकाश है, अर्थात् मैं ज्ञान से जीवन को ज्योतिर्मय करने के लिए यत्नशील होता हूँ। **अमृतम्**-यह नीरोगता है, **हिरण्यम्**-यह शरीर में सुरक्षित हितरमणीय वीर्यशक्ति है। **क्षेत्रात् पक्वम्**-खेतों में जिसका परिपाक हुआ है, वह वानस्पतिक भोज्य पदार्थ है। **मे**-मेरी **एषा** यह **कामदुघा**-खूब ही दूध देनेवाली गौ है। २. **इदं धनम्**-इस धन को **ब्राह्मणेषु निदधे**-मैं ज्ञानियों में स्थापित करता हूँ, अर्थात् ज्ञानियों के लिए आवश्यक धनों को प्राप्त कराता हुआ 'अतिथियज्ञ' करता हूँ। मैं **पितृषु पन्थां कृण्वे**-पितरों में अपने मार्ग को बनाता हूँ, अर्थात् मैं भी पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता हूँ। यह मार्ग वह है **यः**-जोकि **स्वर्गः**-सुख व प्रकाश की ओर जानेवाला है।

भावार्थ—स्वर्ग का मार्ग यह है कि (क) हम ज्ञान का संचय करें, (ख) नीरोग बनें, (ग) वीर्यरक्षण करनेवाले हों (घ) वानस्पतिक भोजन करें, (ङ) घर में कामदुघा धेनु रक्खें, (च) ज्ञानियों को लोकहित के कार्यों के लिए धन दें, (छ) पालनात्मक प्रवृत्तिवाले बनें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिग्जगती** ॥

तुष—कम्बूक

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम्॥ २९॥

१. **तुषान्**=तुषवत् (भूसी की भाँति) तुच्छ प्रकृति के मनुष्यों को **जातवेदसि अग्नौ**=ज्ञानी अग्रणी राजा में **आवप**-फेंक। तुच्छ प्रकृति के दुष्ट पुरुषों को राजा को सौंप देना चाहिए। **एतम्**=इसे **गृहराजस्य**-घरों के रक्षक—राष्ट्रगृह के शासक राजा का **भागं विद्म**=भाग जानते हैं। राजा इन्हें अपनी अधीनता में करके उचित दण्डादि देता हुआ ठीक प्रकृति का बनाने का प्रयत्न करता है। २. **कम्बूकान्**=(plunderer) लुटेरों का **परः**=परस्तात् **दूरम् अपमृड्ढि**-सुदूर सफ़ाया कर दे। इन्हें राष्ट्र से पृथक् कर देना ठीक है। **अथो**=और इन लुटेरों को **निर्ऋतेः**-दुर्गति का **भागधेयम् विद्म**=भाग जानते हैं। इन्हें कष्टमय स्थिति में प्राप्त कराना ही ठीक है।

भावार्थ—राजा को चाहिए कि तुच्छ प्रकृति के दुष्ट पुरुषों को उचित दण्ड आदि द्वारा ठीक प्रकृति का बनाने का प्रयत्न करे—उन्हें ज्ञान देने की व्यवस्था के द्वारा आगे बढ़ाने का प्रयत्न करे (जातवेदस, अग्नि)। लुटेरों को तो राष्ट्र से दूर ही कर दे—उनका कष्टमय स्थिति में होना ठीक ही है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'श्राम्यन्, पचन्, सुन्वन्'

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात्परमापद्य यद्वय उत्तमं नाकं परमं व्यो ᳚म॥ ३०॥

१. ब्रह्मचर्याश्रम में **श्राम्यतः**-ज्ञान-प्राप्ति में श्रम करते हुए, **पचतः**-ज्ञानाग्नि में अपना परिपाक करते हुए, **सुन्वतः**=शरीर में सोम-(वीर्य)-शक्ति का अभिषव करते हुए इन युवकों को **विद्धि**=जान—इनका रक्षण कर। गत मन्त्र के तुषों से ये भिन्न हैं। इन्होंने ही तो राष्ट्रगृह का उत्तम सदस्य बनना है। इनका जितना ध्यान रखा जाए उतना ही ठीक है। हे प्रभो! आप **एनम्**=इस 'श्राम्यन्, पचन्, सुन्वन्' पुरुष को **स्वर्गं पन्थाम्**=प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाले मार्ग पर **अधिरोहय**-अधिरूढ़ कीजिए, २. **येन**=जिससे यह **यत् परं वयः आपद्य**=जो उत्कृष्ट जीवन है, उसे प्राप्त करके **उत्तमं नाकम्**-उत्कृष्ट सुखमय स्थिति को **रोहात्** आरूढ़ हो तथा **परमं व्योम**-सर्वोत्कृष्ट व्योम (आकाशवत् व्यापक) प्रभु को प्राप्त करे (**ओम् खं ब्रह्म**)।

भावार्थ—हम श्रमशील, ज्ञानाग्नि में अपने को परिपक्व करनेवाले व सोम का सम्पादन करनेवाले बनें। प्रकाश व सुख के मार्ग पर आरूढ़ हों। उत्कृष्ट जीवन को प्राप्त करके स्वर्ग-तुल्य इस जीवन को बिताने के बाद प्रभु को प्राप्त करें—मुक्त हो जाएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

मनःशुद्धि + शरीर-शुद्धि

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद्वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः॥ ३१॥

१. हे **अध्वर्यो**-यज्ञशील पुरुष! **बभ्रेः**-धारण करनेवाले **एतत्**-इस ब्रह्मौदन के **मुखं विमृड्ढि**-द्वार को—प्रमुख साधन को—शुद्ध कर डाल। मन ही इस ब्रह्मौदन का 'मुख' है, इस मन को तू शुद्ध करनेवाला बन, **प्रविद्वान्**-ज्ञानी होता हुआ तू **आज्याय**-(अज् to shine, to be beautiful) जीवन को दीप्त व सुन्दर बनाने के लिए **लोकं कृणुहि** प्रकाश का सम्पादन कर। जितना ही अन्त:प्रकाश प्राप्त होगा, उतना ही जीवन दीप्त व सुन्दर बनेगा। २. अब **घृतेन**-मलों के क्षरण व ज्ञानदीप्ति के द्वारा **सर्वा गात्रा अनुविमृड्ढि**-सब अंग प्रत्यंगों को शुद्ध कर डाल। इसप्रकार जीवन को शुद्ध मन के द्वारा ज्ञान से पूरित करके, अन्त:प्रकाश के द्वारा जीवन को सुन्दर बनाकर तथा मलक्षरण द्वारा सब अङ्गों को नीरोग व सशक्त बनाकर मैं **पितृषु**-रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगो में **पन्थां कृण्वे**-मार्ग बनाता हूँ। मैं भी रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त होता हूँ। इसप्रकार मैं उस स्थिति का निर्माण करता हूँ **यः स्वर्गः**-जो प्रकाश व सुख को प्राप्त करानेवाली है।

भावार्थ—स्वर्ग की स्थिति को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम (क) ज्ञान प्राप्ति के साधनभूत मन को शुद्ध बनाएँ, (ख) जीवन को अलंकृत करने के लिए अन्त:प्रकाश प्राप्त करें, (ग) मल-क्षरण द्वारा सब अङ्गों को शुद्ध बना दें, (घ) रक्षणात्मक कार्यों को करनेवाले पितरों के मार्ग पर चलें।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान से अभिमान-विनाश

बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन्प्राशितारः॥ ३२॥

१. **बभ्रे**-हे पोषण करनेवाले ब्रह्मौदन (ज्ञान के भोजन)! **यतमे**-जितने भी **अब्राह्मणाः**-ब्रह्म को न जाननेवाले अज्ञानी पुरुष **त्वा उपसीदान्**-तेरी उपासना करें, अर्थात् ज्ञान प्राप्ति में प्रवृत्त हों, **एभ्यः** इनके लिए तू **सः मदं रक्षः**-मद (अभिमान) से युक्त राक्षसी वृत्तियों को **आवप**-काटनेवाला बन। २. **ते प्राशितारः**-वे ब्रह्मौदन का अशन करनेवाले **मा रिषन्**-राक्षसी वृत्तियों से हिंसित न हों। ये **पुरीषिणः**-पालन व पूरण करनेवाले हों। **पुरस्तात् प्रथमानाः** आगे और आगे शक्तियों का विस्तार करते हुए **आर्षेयाः**-(ऋषौ भवाः, ऋषिर्वेदः) वेदज्ञान में निवास करनेवाले हों।

भावार्थ—ज्ञान हमारे जीवन से अभिमानयुक्त सब राक्षसी वृत्तियों को दूर करे। इस ज्ञान को प्राप्त करनेवाले हम पालन व पूरण करनेवाले बनें, आगे और आगे शक्तियों को विस्तृत करते चलें तथा ज्ञान में ही निवास करनेवाले हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मौदनः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

ज्ञान के द्वारा सब देवों की अनुकूलता

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वेदेवा अभि रक्षन्तु पक्वम्॥ ३३॥

१. प्रभु कहते हैं कि हे **ओदन**-ब्रह्मौदन—ज्ञान के भोजन! **त्वा**-तुझे **आर्षेयेषु** ज्ञानरुचिवाले पुरुषों में **निदधे**-स्थापित करता हूँ। **अनार्षेयाणाम्**-ज्ञानरुचिशून्य पुरुषों का **अत्र** इस ब्रह्मौदन में **न अपि अस्ति**-भाग नहीं है। ज्ञान की रुचि के अभाव में उन्हें ज्ञान प्राप्त करना ही क्या? २. ज्ञान की रुचिवाले पुरुष को **मे अग्निः गोप्ता**-मेरा यह अग्नितत्त्व रक्षित करनेवाला होता है, **च**-और **सर्वे मरुतः**-सब मरुत (प्राण) भी उस ज्ञानरुचि पुरुष का रक्षण करते हैं। ज्ञानरुचिता

होने पर वासनामय जीवन नहीं होता और वासनामय जीवन के न होने पर शरीर में अग्नितत्त्व तथा प्राणशक्ति ठीक बनी रहती है। **पक्वम्**=इस ज्ञान परिपक्व मनुष्य को **विश्वेदेवाः**-संसार के सूर्य-चन्द्रादि सब देव **अभिरक्षन्तु**-सर्वतः रक्षित करनेवाले हों। ज्ञानी पुरुष सब देवों के साथ समुचित सम्पर्क बनाता हुआ सुखी व नीरोग जीवनवाला होता ही है।

भावार्थ—ज्ञानरुचि पुरुष ज्ञान को प्राप्त करके, सब देवों के साथ समुचित सम्पर्क बनाते हुए, सुखी व सुरक्षित जीवनवाले होते हैं। वासनामय जीवन न होने के कारण इनके शरीर में अग्नितत्त्व तथा प्राणशक्ति ठीक बनी रहती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

प्रजामृतत्वम्—दीर्घम् आयुः—ऐश्वर्यम्

यज्ञं दुहानं सदमित्प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम॥ ३४॥

१. हे प्रभो! ज्ञान प्राप्त करते हुए हम **त्वा उपसदेम**-आपके समीप प्राप्त हों, जो आप **यज्ञं दुहानम्**-सब यज्ञों का प्रपूरण करनेवाले हैं। **सदम् इत् प्रपीनम्** सदा से ही प्रवृद्ध हैं। **पुमांसम्** (पू+डुयसुन) पवित्र करनेवाले हैं **धेनुम्**=ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाले तथा **रयीणां सदनम्**-सब ऐश्वर्यों का निवास-स्थान हैं। २. आपकी उपासना करते हुए हम **प्रजामृतत्वम्**=(प्रजया अमृतत्त्वम् 'प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम्'—ऋ० ५।४।१०) प्रजाओं के द्वारा अमृतत्त्व को, **उत**-और **दीर्घम् आयुः**-दीर्घ जीवन को, **च**-तथा **रायः पोषैः**=धन के पोषणों के साथ उत्तम आयुष्य को (**उपसदेम**=उपगम्यास्म) प्राप्त हों।

भावार्थ—प्रभु यज्ञों का पूरण करनेवाले, सदा से वृद्ध, पवित्र करनेवाले, ज्ञानदुग्ध का पान करानेवाले व धनों के कोश हैं। हम प्रभु की उपासना करते हुए प्रजाओं के द्वारा अमृतत्त्व को, दीर्घजीवन व ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**चतुष्पदाककुम्मत्युष्णिक्**॥

वृषभः—स्वर्गः

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान्गच्छ। सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम्॥ ३५॥

१. हे प्रभो! आप **वृषभः असि**=सुखों व शक्ति का सेचन करनेवाले हैं, **स्वर्गः**-प्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं (स्वः गमयति)। आप **ऋषीन्**-(ऋष् to kill) वासनाओं का संहार करनेवाले **आर्षेयान्**-(ऋषौ वेदे भवान्) ज्ञान में रुचिवाले पुरुषों को **गच्छ**-प्राप्त होओ। २. आप **सुकृताम्**-पुण्यकर्मा लोगों के **लोके**=लोक में **सीद**-आसीन होओ। **तत्र**=वहाँ सुकर्मा लोगों के लोक में **नौ**=पति पत्नी हम दोनों का **संस्कृतम्**-(Purification) पवित्रीकरण हो। सत्संग में हम पवित्र जीवनवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु वृषभ हैं—स्वर्ग हैं। वासनाओं को विनष्ट करनेवाले ज्ञानरुचि पुरुषों को प्राप्त होते हैं। पुण्यकर्मा लोगों के लोक में प्रभु का निवास है। वहाँ सज्जन संग में ही हम पति-पत्नी का पवित्रीकरण होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**पुरोविराट्त्रिष्टुप्**॥

ब्रह्मलोक-प्राप्ति

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ॥ ३६॥

१. हे **अग्ने** प्रगतिशील जीव! **सम् आचिनुष्व** तू सब ओर से ज्ञान का संचय कर और **अनु सं प्रयाहि** उस ज्ञान के अनुसार सम्यक् गतिवाला हो। अपने जीवन में **देवयानान् पथः कल्पय** देवयान मार्गों का निर्माण कर—उन मार्गों से चल, जिनपर देव चला करते हैं। २. यह ज्ञान संचेता जीव प्रार्थना करता है कि **एतैः सुकृतैः** इन उत्तम कर्मों से हम **अधि सप्तरश्मौ**-सूर्य से भी ऊपर **नाके**-दुःख से असंभिन्न आनन्दमय स्वरूप में **तिष्ठन्तम्** स्थित होते हुए **यज्ञम्** उस उपास्नीय—संगतिकरणयोग्य व समर्पणीय प्रभु को **अनुगच्छेम** प्राप्त हों। '**सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा**'।

भावार्थ—हम ज्ञान का सञ्चय करें, ज्ञान के अनुसार कर्मों को करनेवाले बनें। देवयान मार्गों पर चलें। इन पुण्यकर्मों के द्वारा 'पृथिवीलोक से ऊपर अन्तरिक्ष को, अन्तरिक्ष से ऊपर द्युलोक को तथा द्युलोक से ऊपर उठकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करें।'

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मौदनः**॥ छन्दः—**विराड् जगती**॥

ज्ञान-सुकृत—प्रकाश व आनन्द

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन्ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्व१रारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम्॥ ३७॥

१. **देवाः**-देव लोग **येन ज्योतिषा**-जिस ज्योति के द्वारा **ब्रह्मौदनम्** ज्ञानरूपी भोजन का **पक्त्वा** परिपाक करके **सुकृतस्य लोकम्** पुण्यकर्मों के लोकभूत **द्याम् उद् आयन्**-द्युलोक को प्राप्त करते हैं, **तेन** उस ज्योति से हम भी **सुकृतस्य लोकम्** पुण्यकर्मों के लोक को **गेष्म** प्राप्त हों। २. **स्वः आरोहन्तः**-प्रकाश में आरोहण करते हुए हम **उत्तमम् नाकम् अभि** (**गेष्म**) -सर्वोत्तम आनन्दमय लोक की ओर जाएँ।

भावार्थ—ज्ञान प्राप्त करके हम सुकृतों द्वारा प्रकाशमय लोक का विजय करें। प्रकाशमय लोक से आनन्दमय लोक में पहुँचें।

यह ज्ञानी पुरुष 'अथर्वा'-न डाँवाडोल वृत्तिवाला बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**परातिजागताविराड्जगती**॥

भव व शर्व का अनुग्रह

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम्।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः॥ १॥

१. **भवाशर्वौ** (भवति अस्मात् सर्वं जगत्, शृणाति सर्वं जगत्) सृष्टि के आदि में सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाले व संहति समय पर समस्त संसार को समाप्त करनेवाले प्रभो! **मृडतम्**-हमें सुखी करो। **मा अभियातम्** रक्षणार्थ मुझे आभिमुख्येन प्राप्त होओ, अथवा हिंसन के लिए मुझपर आक्रमण मत करो। **भूतपती**-आप सब प्राणियों के रक्षक हो, **पशुपती**-गौ-महिष आदि सब पशुओं का पालन करनेवाले हो। **वाम् नमः** आपको मेरा नमस्कार है। २. आप **प्रतिहिताम्** अपने धनुष पर जोड़ी हुई **आयताम्** ज्या (डोरी) के साथ खैंचे हुए अपने इषु (बाण) को **मा विस्राष्टम्**-हमपर मत छोड़ो। **नः** हमारे **द्विपदः** दो पाँववाले पुत्र भृत्यादिरूप मनुष्यों को तथा **चतुष्पद** चार पाँववाले गो-महिष, अश्वादि प्राणियों को **मा हिंसिष्टम्**-हिंसित मत करो।

भावार्थ—प्रभु ही संसार की उत्पत्ति व विनाश करनेवाले हैं। हम प्रभु का अनुग्रह प्राप्त

करें। हम सब भूतों व पशुओं के पति उस प्रभु के दण्डपात्र न हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भापञ्चपदापथ्याजगती** ॥

पशुपति द्वारा रक्षण

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त॥ २॥

१. हे भव और शर्व प्रभो! **शरीराणि**=हमारे शरीरों को **शुने क्रोष्ट्रे**=कुत्ते व गीदड़ के लिए **मा कर्तम्**=मत कीजिए—हम कुत्तों व गीदड़ों के भोजन न बन जाएँ। **अलिक्लवेभ्यः** (a kind of carrion bird अलं, शक्ति, क्लव भये) अपनी शक्ति से भयभीत करनेवाले **गृध्रेभ्यः**=गिद्धों के लिए **च ये**=अथवा जो **कृष्णाः**=कृष्णवर्णवाले **अविष्यवः**=मांसेच्छु पक्षी आकाश में उड़ते हैं, इनके भक्षण के लिए शरीरों को न कीजिए। २. हे **पशुपते**=सब पशुओं के पालक प्रभो! **ते मक्षिकाः**=ये आपकी मक्खियाँ, **ते वयांसि**=आपके ये पक्षी **विघसे**=अन्न के निमित्त **मा विदन्त**=हमारे शरीरों को न प्राप्त करें—हम इनका भोजन न बन जाएँ।

भावार्थ—हे प्रभो! आप सबके रक्षक हैं। आपसे रक्षित हुए-हुए हम कुत्तों, गीदड़ों, भयंकर गिद्धों, कौवों, मक्खियों व अन्य पक्षियों के भोजन न बन जाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**चतुष्पदास्वराडुष्णिक्** ॥

रुद्र के लिए प्रणाम

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः। नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य॥ ३॥

१. हे प्रभो! **ते**=आपके **क्रन्दाय**=क्रन्दन व शब्द के लिए—सृष्टि के प्रारम्भ में दिये जानेवाले वेदज्ञान के लिए (हरिरेति कनिक्रदत्), **प्राणाय**=आपसे दी जानेवाली इस प्राणवायु के लिए **नमः**=हम नमस्कार करते हैं। **च**=और हे **भव**=सृष्टि को जन्म देनेवाले प्रभो! **या**=जो **ते**=आपकी **रोपयः**=विमोहनशक्तियाँ हैं, प्रलयकाल में मूढ़ अवस्था में प्राप्त करानेवाली शक्तियाँ हैं, उन सबके लिए हम नमस्कार करते हैं। २. हे **रुद्र**=अन्तकाल में सबको रुलानेवाले (रोदयति), सब (रुत् द्र) दुःखों के दूर करनेवाले (द्रावक) प्रभो! **अमर्त्य**=अमरणधर्मा **सहस्राक्षाय**=सहस्रों दर्शन शक्तियोंवाले, सर्वजगत् साक्षी **ते**=आपके लिए **नमः कृण्मः**=हम नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान देते हैं, प्राणशक्ति प्राप्त कराते हैं, निद्रा व प्रलय में मूढ़ अवस्था में प्राप्त कराते हैं। सब दुःखों के द्रावक, अमरणधर्मा व सर्वसाक्षी हैं। उन आपके लिए हम नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नमः पुरस्तात् अथ पृष्ठतः ते

पुरस्तात्ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत। अभीवर्गाद्दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः॥ ४॥

१. हे रुद्र! **पुरस्तात्**=पूर्व दिशा में **ते नमः कृण्मः**=आपके लिए नमस्कार करते हैं, **उत**=तथा **उत्तरात्**=उत्तर दिशा में आपके लिए नमस्कार करते हैं। २. **अभीवर्गात्**=(अभितःवृज्यते गृहादिरूपेण परिच्छिद्यते इति अभीवर्गः, अवकाशात्मक आकाशः) अवकाशात्मक आकाश से व **दिवः परि**=द्योतमान आकाश से ऊपर के भाग में **अन्तरिक्षाय**=नियन्तृरूपेण सबके अन्दर अवस्थित (अन्तरा क्षान्ताय) **ते नमः**=आपके लिए नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सब ओर हैं। गृहादि से परिच्छिन्न आकाश से,

द्योतमान आकाश से भी परे व सबके अन्दर नियन्तृरूपेण वे निवास कर रहे हैं। उनके लिए हम नतमस्तक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**५ अनुष्टुप्, ६ आर्षी गायत्री**॥

मुख आदि अंगों में प्रभुमहिमा का दर्शन

मुखा॑य ते पशुपते॒ यानि॒ चक्षूं॑षि ते भव। त्व॒चे रू॒पाय॑ स॒न्दृशे॑ प्रती॒चीना॑य ते॒ नमः॑॥ ५॥

अङ्गे॑भ्यस्त उ॒दरा॑य जि॒ह्वायां॑ आ॒स्या॒३॑य ते। द॒द्भ्यो ग॒न्धाय॑ ते॒ नमः॑॥ ६॥

१. हे **पशुपते**-सब पशुओं के रक्षक प्रभो! **ते मुखाय नमः** आपके मुख के लिए नमस्कार करते हैं—आपसे दिये गये इस मुख के महत्त्व को समझते हुए हम इसका उचित आदर करते हैं। हे **भव** उत्पादक प्रभो! **यानि** जो **ते चक्षूंषि** आपकी दी हुई ये आँखे हैं, इनके लिए हम नमस्कार करते हैं। **ते** आपसे दिये गये **त्वचे** त्वचा के लिए, **रूपाय**-सौन्दर्य के लिए **संदृशे**-सम्यग् दर्शन व ज्ञान के लिए तथा **प्रतीचीनाय** अन्तःस्थित प्रत्यगात्मरूप आपके लिए **नमः** नमस्कार करते हैं। २. **ते** आपके इन **अंगेभ्यः** अंगों के लिए **उदराय** उदर के लिए **नमः** नमस्कार करते हैं। **ते** आपसे दी गई **जिह्वायै** जिह्वा के लिए **आस्याय** मुख के लिए—वाक्शक्ति के लिए नमस्कार करते हैं। **ते** आपसे दिये गये **दद्भ्यः** दाँतों के लिए तथा **गन्धाय** गन्धग्राहक घ्राणेन्द्रिय के लिए नमस्कार करते हैं। इनका उचित प्रयोग ही इनका आदर है।

भावार्थ—प्रभु से दिये गये मुख आदि अंगों का ठीक प्रयोग करते हुए हम प्रभु को नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभु से मेल क्यों?

अस्त्रा॒ नील॑शिखण्डेन सहस्रा॒क्षेण॑ वा॒जिना॑।

रु॒द्रेणा॑र्धकघा॒तिना॒ तेन॒ मा सम॑रामहि॥ ७॥

१. **अस्त्रा** (अस् दीप्तौ, तृन्) दीप्तिवाले, **नीलशिखण्डेन** (नी प्रापणे, नीलः निधिः, शिखण्डः प्राप्तिः, शिख गतौ) निधियों को प्राप्त करानेवाले **सहस्राक्षेण**-हज़ारों आँखोंवाले—सर्वद्रष्टा, **वाजिना**-शक्तिशाली, **रुद्रेण** दुःखों के द्रावक, **अर्धकघातिना**-अधूरेपन को नष्ट करनेवाले—पूर्णता व सफलता को प्राप्त करानेवाले **तेन** इस प्रभु से हम **मा सम् अरामहि** (समर) लड़ाई करनेवाले न हों—प्रभु के साथ हम एक बननेवाले हों।

भावार्थ—जितना जितना हमारा प्रभु से मेल होगा, उतना उतना हमारा जीवन दीप्त बनेगा, हम निधि-सम्पन्न बनेंगे, विस्तृत दृष्टिवाले, शक्तिशाली, दुःखरहित व पूर्णता को प्राप्त करनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**महाबृहती**॥

प्रभु नमन व पापवर्जन

स नो॑ भ॒वः परि॑ वृणक्तु वि॒श्वत॒ आप॑इवा॒ग्निः परि॑ वृणक्तु नो भ॒वः।

मा नो॒ऽभि मांस्त॒ नमो॑ अस्त्वस्मै॥ ८॥

१. **सः भवः** वह सुखोत्पादक प्रभु **नः** हमें **विश्वतः परिवृणक्तु** सब ओर से उपद्रवों से वर्जित (रहित) करे। **इव** जैसे **अग्निः** दग्ध करता हुआ अग्नि **आपः** जलों को छोड़ देता है, इसी प्रकार **भवः** वह उत्पादक प्रभु **नः** हमें **परिवृणक्तु** उपद्रवसमूह से परिवर्जित करे। २. पाप से रहित **नः** हमें **मा अभिमांस्त**-वे प्रभु हिंसित न करें (मन्यतिर्हिंसाकर्मा)। **अस्मै** इस प्रभु के लिए **नमः अस्तु** हमारा सदा नमस्कार हो। यह प्रभु नमन ही वस्तुतः हमें पापों व

उपद्रवों से बचानेवाला बनता है।

भावार्थ—प्रभुकृपा से पाप हमें इसप्रकार छोड़ जाएँ, जैसेकि अग्नि जलों को छोड़ जाता है। हम रुद्र को प्रणाम करनेवाले बनें, रुद्र हमारे पापों का विनाश करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**आर्षीत्रिष्टुप्** ॥

पञ्च पशवः

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः॥ ९ ॥

१. **भवाय**-संसार को उत्पन्न करनेवाले प्रभु के लिए **चतुः**=चार बार, चार ही बार क्यों? **अष्टकृत्वः** आठ बार **नमः**-नमस्कार हो। पूर्वादि चारों दिशाओं में नमस्कार हो, और चार ही क्यों? अवान्तर दिशाओं को मिलाकर आठों दिशाओं में प्रभु के लिए हमारा नमस्कार हो। हे **पशुपते**-सब प्राणियों के रक्षक प्रभो! **दशकृत्वः**-दस बार **ते नमः**-आपके लिए नमस्कार हो। चार दिशा, चार अवान्तर दिशा तथा नीचे ऊपर (ध्रुवा-ऊर्ध्वा) को मिलाकर दस बार प्रभु को प्रणाम हो। २. हे प्रभो! **इमे**-ये **पञ्च पशवः**-पाँच पशु **तव**-आपके **विभक्ताः**-(वि भज् सेवायाम्) विशिष्ट रूप से सेवित हैं—आपके ये स्वभूत ही हैं—दाहिनी ओर **गावः अश्वाः**=गौ व घोड़े, बीच में **पुरुषाः**-मनुष्य तथा बायीं ओर **अजावयः**-बकरी व भेड़ें। वस्तुतः गौवें व घोड़े मनुष्य के दाहिने हाथ हैं, तो अजा-अवि उसके बायें हाथ के समान हैं। मानव उन्नति में इन चारों पशुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भावार्थ—हम सब दिशाओं में प्रभु के लिए प्रणाम करते हैं। पशुपति प्रभु ने मनुष्य को केन्द्र में रखकर उसकी उन्नति में साधनभूत गौ-घोड़े, अजा व अवि आदि पशुओं को बनाया है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरःकृतिः त्रिपदाविराट्त्रिष्टुप्** ॥

प्रभु के प्रशासन में

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व१न्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणत्पृथिवीमनु॥ १० ॥

१. हे **उग्र**=उद्गूर्णबल रुद्र! **चतस्रः** चारों **प्रदिशः**-प्रधानभूत प्राची आदि दिशाएँ **तव**-आपकी ही स्वभूत हैं। **द्यौः**-वह प्रकाशमय स्वर्गलोक भी **तव**=आपके ही वश में है। **पृथिवी**-यह पृथिवीलोक भी **तव**=आपका ही स्वभूत है। **इदम्**-यह **उरु**-विस्तीर्ण **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष भी **तव**-आपके ही अधीन है। २. **इदं सर्वं आत्मन्वत्**=भोक्तृरूप आत्मा से अधिष्ठित ये सब शरीरसमूह **तव**-आपके ही प्रशासन में हैं। **पृथिवीम् अनु**-पृथिवी को लक्ष्य करके, अर्थात् इस पृथिवी पर **यत् प्राणत्**-जो प्राण ले-रहा है, वह सब आपके ही प्रशासन में है।

भावार्थ—सब ब्रह्माण्ड व सब प्राणी प्रभु के प्रशासन में ही चल रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाजगतीगर्भाविराट्शक्वरी** ॥

विशाल ब्रह्माण्डकोश के स्वामी प्रभु को प्रणाम

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्य१ः॥ ११ ॥

१. हे **पशुपते**-सब प्राणियों के रक्षक प्रभो! **अयम्**=यह **वसुधानः** निवास के हेतुभूत सब लोकों को धारण करनेवाला **उरुः कोशः**=विशाल ब्रह्माण्डकोश **तव**-आपका ही स्वभूत है,

यस्मिन् अन्तः जिस ब्रह्माण्डकोश के अन्दर **इमा विश्वा भुवनानि**-ये सब भूतसमूह निवास करते हैं, **सः** वे आप **नः** हमारे लिए **मृड** सुख दीजिए। **ते नमः**-हम आपके लिए नतमस्तक होते हैं। २. आपके अनुग्रह से **अभिभाः**=अभिभव करनेवाले **क्रोष्टारः**-क्रोशनशील गीदड़ व **श्वानः** कुत्ते **परः** हमसे परे हों तथा **अघरुदः** अमंगलकर रोदनवाली **विकेश्यः**-विकीर्ण केशोंवाली पीड़ाएँ **परः यन्तु**=हमसे दूर हों।

भावार्थ—प्रभु इस विशाल ब्रह्माण्डकोश के स्वामी हैं। हम उन्हें प्रणाम करते हैं। प्रभुकृपा से हम गीदड़ों व कुत्तों से आक्रान्त न हों। हम बिखरे हुए केशोंवाली, कष्टकर रोदनवाली पीड़ाओं से बचे रहें

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

धनुर्धारी रुद्र

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशी३तः॥ १२॥

हे **शिखण्डिन्** (शिख गतौ) सर्वत्र गतिशील परमात्मन्! आप **धनुः बिभर्षि**-धनुष धारण करते हैं जो धनुष **हरितम्** दुष्टों का हरण करनेवाला व **हिरण्ययम्**-हिरण्य का विकारभूत, अर्थात् दीप्त है। **सहस्रघ्नि**-हज़ारों को एक ही प्रयत्न से मारनेवाला है **शतवधम्**=सैंकड़ों आयुधों (वध वज्र—नि०) से युक्त है। २. **रुद्रस्य**-दुष्टों को रुलानेवाले **देवहेतिः**-उस देव का हनन साधन **इषुः** बाण **चरति** गतिवाला होता है। **इतः**=यहाँ हमारे स्थान से **यतमस्यां दिशि**-जिस भी दिशा में यह रुद्र का इषु गतिवाला होता है, **तस्यै**-उस रुद्र के इषु के लिए **नमः**-हम नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—प्रभु को धनुर्धारी रुद्र के रूप में स्मरण करते हुए हम पाप से बचें और प्रभु के इषु से विद्ध किये जाने योग्य न हों

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भागकर कहाँ जाएँगे?

यो३भियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव॥ १३॥

१. हे **रुद्र**-दुष्टों को रुलानेवाले प्रभो! जो भी पापकर्त्ता **अभियातः**-तुझसे अभिगत (आक्रान्त) होता हुआ **निलयते**-छुपाने की कोशिश करता है, और **त्वां निचिकीर्षति**-आपको हिंसित करना चाहता है, आप **पश्चात्**-एकदम इसके बाद ही **तम् अनुप्रयङ्क्षे**-उस अपकारी जन को यथापराध दण्डित करते हैं। उसी प्रकार दण्डित करते हैं **इव**=जैसेकि **विद्धस्य पदनीः** शस्त्रहत पुरुष के भूमि-निक्षिप्त पैरों के निशान देखता हुआ पुरुष शत्रु के निलयन स्थान तक पहुँचकर उस शत्रु को प्रतिविद्ध करता है।

भावार्थ—पापकर्त्ता पुरुष प्रभु के बाण से अपने को बचा नहीं सकते। कहीं भी छिपकर भाग जाए, कितना भी प्रभु का हिंसन करना चाहे, वह रुद्र के बाणों का गोचर होकर ही रहता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

भवः+रुद्रः

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्या ᳡य।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः॥ १४॥

१. **भवारुद्रौ**='सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले व अन्ततः प्रलय करनेवाले' प्रभु के ये दोनों रूप **सयुजौ**-परस्पर मेलवाले व **संविदानौ**-ऐकमत्यवाले हैं। इनमें विरोध हो, ऐसी बात नहीं। प्रारम्भ करने के समय प्रभु 'भव' हैं, समाप्त करने के समय वे 'रुद्र' हैं। **उभौ उग्रौ**=ये भव और रुद्र दोनों उद्गूर्ण बलवाले हैं। **वीर्याय चरतः**=शक्तिशाली कर्म के लिए गतिवाले होते हैं। २. **इतः**=यहाँ से **यतमस्यां दिशि**=जिस भी दिशा में वे भव और रुद्र हैं **ताभ्यां नमः**-हम उन दोनों के लिए उस दिशा में नमस्कार करते हैं। 'पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे' सब ओर हम प्रभु को भव और रुद्र के रूप में देखते हैं और उन्हें नमस्कार करते हैं।

भावार्थ—हम 'सृष्टि व प्रलय' रूप दोनों कार्यों में प्रभु की महिमा का अनुभव करें और उस भव और रुद्ररूप प्रभु को सब ओर नमस्कार करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'भवाय शर्वाय' नमः

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते। नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा। भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

१. हे **रुद्र**-दुःखों के द्रावक प्रभो! **आयते ते नमः अस्तु**=हमारे अभिमुख आते हुए आपके लिए नमस्कार हो, **परायते नमः अस्तु**=दूर जाते हुए भी आपके लिए नमस्कार हो। **तिष्ठते ते नमः**-खड़े होते हुए आपके लिए नमस्कार हो, **उत**=और **आसीनाय ते नमः**-बैठे हुए आपके लिए नमस्कार हो। निराकार प्रभु में इन आने-जाने व उठने की क्रियाओं का सम्भव नहीं है, परन्तु पुरुषरूप में प्रभु का ध्यान करता हुआ उपासक प्रभु को इन रूपों में देखता है। २. **सायं नमः**=सायं नमस्कार हो, **प्रातः नमः**-प्रातःकाल नमस्कार हो, **रात्र्या नमः**-रात्रि के समय नमस्कार हो, **दिवा नमः**-दिन के समय नमस्कार हो। **भवाय च शर्वाय च उभाभ्याम्**-सृष्टि के उत्पादक व संहारक दोनों रूपोंवाले प्रभु के लिए मैं **नमः अकरम्**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—हम आते-जाते, उठते-बैठते, प्रभु के लिए नमस्कार करें। प्रातः व सायं तथा दिन में व रात में प्रभु को उत्पादक व प्रलयकर्त्ता के रूप में सोचते हुए नतमस्तक हों।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

'जिह्वया ईयमान' रुद्र का अविस्मरण

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥

१. **सहस्राक्षम्**-सहस्रों आँखोंवाले, **अतिपश्यम्**=सब बाधाओं का अतिक्रमण करके देखनेवाले, **पुरस्तात् बहुधा अस्यन्तम्**-अनेक प्रकार से शर-जाल को सामने फेंकते हुए **विपश्चितम्**-ज्ञानी **रुद्रम्**=उस दुःखद्रावक प्रभु को, **जिह्वया ईयमानम्**=प्रलयकाल में जिह्वाग्र से सारे संसार के भक्षण के लिए गति करते हुए को **मा उप अराम**=(ऋ हिंसायाम्) हिंसित न करें—न भूलें।

भावार्थ—रुद्ररूप में प्रभु का स्मरण हमें पवित्र जीवनवाला बनाये।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

'श्यावाश्व' प्रभु को प्रणाम

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

१. **श्यावाश्वम्**=(श्यैङ् गतौ, अश् व्याप्तौ) गतिमात्र में व्याप्तिवाले, अर्थात् सम्पूर्ण गतियों

के कारणभूत, **कृष्णम्**-सबको आकृष्ट करनेवाले **असितम्** अबद्ध, **मृणन्तम्** शत्रुओं को हिंसित करते हुए, **भीमम्** शत्रु भयंकर, **केशिनः** प्रकाश की किरणरूप केशोंवाले सूर्य के **रथम्** रथ को **पादयन्तम्**-गति देते हुए उस प्रभु को **पूर्वे** अपना पालन व पूरण करनेवाले हम **प्रतीमः**-(प्रति इमः) जानते हैं—उसके साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करते हैं। **अस्मै नमः अस्तु** इस प्रभु के लिए नमस्कार हो।

भावार्थ—हम प्रभु का इस रूप में स्मरण करते हैं कि वे गतिमात्र के स्रोत हैं, सबका आकर्षण करनेवाले, अबद्ध, शत्रुओं का संहार करनेवाले व शत्रुभयंकर हैं। सूर्य के रथ को गति देनेवाले उस प्रभु का हम अपना पालन व पूरण करते हुए साक्षात्कार करते हैं और उस प्रभु के प्रति नतमस्तक होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री**॥

वज्रपात का न होना

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद्दिव्यां शाखां वि धूनु॥ १९॥

१. हे **पशुपते** प्राणियों के रक्षक प्रभो! **मत्यम्** (मते समीकरणे साधुः A harrow) सबको बराबर कर देनेवाली **देवहेतिम्**-इस दिव्य अस्त्ररूप विद्युत् को **नः** हमारा **मा अभिस्रा:** लक्ष्य करके मत फेंकिए। हमपर आकाश से यह बिजली न गिर पड़े। गिरती हुई विद्युत् सबको गिराती हुई समीकृत सा कर देती है। **नः मा क्रुधः** हमारे प्रति आप क्रोध न कीजिए—हम पाप से बचते हुए आपके क्रोध-पात्र न हों। **नमः ते** हम आपके लिए नतमस्तक होते हैं। २. इस **दिव्याम्** आकाश में होनेवाली—अलौकिक—**शाखाम्** (खे शेते, शक्नोतेर्वा—नि०) आकाश में शयन करनेवाली शक्तिशाली विद्युत् को **अस्मत् अन्यत्र**-हमसे भिन्न अन्य स्थान में ही **विधूनु** कम्पित कीजिए। हम विद्युत्पतन के शिकार न हों।

भावार्थ—जीवन को स्वाभाविक व सरल बनाते हुए हम विद्युत्पतन आदि आधिदैविक आपत्तियों के शिकार न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिग्गायत्री**॥

प्रभु के निर्देशानुसार

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः। मा त्वया समरामहि॥ २०॥

१. हे पशुपते! **नः मा हिंसी:**-हमें हिंसित मत कीजिए। **नः**-हमें **अधिब्रूहि**-आधिक्येन ज्ञानोपदेश कीजिए। **नः** हमें **परिवृङ्ग्धि**-सब पापों से बचाइए। **मा क्रुधः**-हमपर क्रोध मत कीजिए। सदा शुभाचरण करते हुए हम आपके प्रिय बनें। २. हे प्रभो! हम **त्वया**-आपके साथ **मा समरामहि** समर (युद्ध) की स्थिति में न हों। सदा आपके निर्देशों के अनुसार चलनेवाले हों।

भावार्थ—हम प्रभु से ज्ञान प्राप्त करके तदनुसार गति करते हुए कभी प्रभु के क्रोध के पात्र न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पियारू-प्रजा-हनन

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि॥ २१॥

१. हे **उग्र** उद्गूर्णबल प्रभो! **नः** हमारी **गोषु**-गौवों में व **पुरुषेषु** पुरुषों में **मा गृधः**-हिंसित

करने के लिए कामना न कीजिए। इसीप्रकार **नः**-हमारी **अजा-अविषु**=बकरियों व भेड़ों में **मा**-(गृधः) हिंसा की कामना न कीजिए। ये सब हे पशुपते! आप द्वारा रक्षित ही हों। २. हे प्रभो! आप अपने वज्र को **अन्यत्र**=हमसे भिन्न स्थान में ही **विवर्तय**-प्राप्त कराइए—फेंकिए। **पियारूणाम्**-(पीयतिहिंसाकर्मा—नि०) हिंसकों की **प्रजां जहि**-प्रजा को ही विनष्ट कीजिए।

भावार्थ—पशुपति के प्रसाद से हमारी गौवें, मनुष्य, भेड़ व बकरियाँ सब सुरक्षित हों। प्रभु का वज्र हिंसकों को ही विनष्ट करनेवाला हो।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**विषमपादलक्ष्मात्रिपदामहाबृहती** ॥

'तक्मा कासिका' रूप रुद्रहेति

यस्य॑ त॒क्मा का॒सिका॑ हे॒तिरेक॒मश्व॑स्येव॒ वृष॑णः क्रन्द॒ एति॑।
अ॒भि॒पूर्वं नि॒र्णय॑ते॒ नमो॑ अस्त्व॒स्मै॥ २२॥

१. **यस्य**-जिस रुद्र की **तक्मा**-जीवन को कष्टप्रद बना देनेवाली **कासिका**=कुत्सित शब्दकारिणी ज्वरादि पीड़ा **हेतिः**-हनन-साधन—आयुधरूप होती हुई **एकम्**=एक अपकारी पुरुष को इसप्रकार **एति** प्राप्त होती है **इव**=जैसेकि **वृषणः**-शक्तिशाली **अश्वस्य**-घोड़े का **क्रन्दः**-हेषा शब्द ही हो, अर्थात् प्रभु ज्वरयुक्त खाँसी को भी पापकर्म के दण्ड के रूप में प्राप्त कराते हैं। २. **अभिपूर्वम्**=पूर्वजन्म के कर्मों का लक्ष्य करके **निर्णयते**-दण्ड का निर्णय करते हुए **अस्मै नमः अस्तु**=इस रुद्र के लिए नमस्कार हो।

भावार्थ—रुद्र प्रभु कर्मों के अनुसार दण्ड का निर्णय करते हुए अपकारी पुरुष को ज्वरयुक्त खाँसी प्राप्त कराते हैं। यह उस पापकारी के जीवन को कष्टमय बनाती हुई उसे पाप से रुकने की प्रेरणा देती है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री** ॥

'अयज्वा देवपीयु' का दण्डन

यो॒३॒॑न्तरि॑क्षे॒ तिष्ठ॑ति॒ विष्ट॑भि॒तोऽय॑ज्वनः प्रमृ॒णन्दे॑वपी॒यून्।
तस्मै॒ नमो॑ द॒शभि॒ः शक्व॑रीभिः॥ २३॥

१. **यः** जो प्रभु **अन्तरिक्षे**=इस द्यावापृथिवी के मध्य में—अन्तरिक्ष में सर्वत्र—**विष्टभितः** स्थिर हुए-हुए **तिष्ठति**=ठहरे हैं, वे **अयज्वनः**-अयज्ञशील **देवपीयून्** देवों के—सज्जनों के हिंसक पुरुषों को **प्रमृणन्**=कुचल देते हैं। **तस्मै** उस रुद्र प्रभु के लिए **दशभिः** दसों **शक्वरीभिः**-कर्मों में शक्त अंगुलियों से **नमः**-नमस्कार हो, अर्थात् उन रुद्र के लिए हम अञ्जलिबन्धन द्वारा प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—प्रभु आकाशवत् सर्वत्र स्थित हैं(ओम् खं ब्रह्म)। वे अयज्ञशील, देवहिंसक पुरुषों को पीड़ित करते हैं। हम प्रभु को प्रणाम करते हुए यज्ञशील व सज्जन सेवक ही बनें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

प्रभु के शासन में

तुभ्य॑मार॒ण्याः प॒शवो॑ मृ॒गा वने॑ हि॒ता हं॒साः सु॑प॒र्णाः श॑कु॒ना वयां॑सि।
तव॑ य॒क्षं प॑शुपते अ॒प्स्व॑१॒न्तस्तुभ्यं॑ क्षरन्ति दि॒व्या आपो॑ वृ॒धे॥ २४॥

१. **तुभ्यम्**-तेरे शासन के मानने के लिए ही ये सब **आरण्याः पशवः**-वन्य पशु हैं। आपसे ही **वने**-वन में **मृगाः**-हरिण, शार्दूल, सिंह आदि पशु, **हंसाः**-हंस, **सुपर्णाः**-शोभनपतनवाले श्येन आदि, **शकुनाः**=शक्तिशाली गृध्र आदि **वयांसि**-(वनचर) पक्षी **हिताः**-स्थापित किये गये

हैं। २. **तव** आपका **यक्षम्** पूजनीय अंश ही **अप्सु अन्तः** सब प्रजाओं के अन्दर है। **दिव्याः आपः** ये अन्तरिक्षस्थ जल **तुभ्यं वृधे** आपकी महिमा को बढ़ाने के लिए ही **क्षरन्ति** क्षरित हो रहे हैं। बरसते हुए मेघों में प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है।

भावार्थ—सब आरण्य पशु पक्षी प्रभु के शासन में ही गति कर रहे हैं। प्रजाओं में भी वह वह विभूति उस प्रभु के अंश के कारण ही है। बरसते हुए मेघों में भी प्रभु की ही महिमा दिखती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पञ्चपदातिशक्वरी**॥

जलचरों में प्रभु-महिमा का प्रकाश

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्परि
पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे॥ २५॥

१. **शिंशुमाराः**-नक्र विशेष, **अजगराः**=अजगर, **पुरिकयाः**-कठोर पीठवाले कछुए, **जषाः**-बड़े मत्स्य **मत्स्याः**-मछलियाँ, **रजसाः**-(रजांसि उदकम्—नि०) अन्य जलचर—ये सब प्राणी तेरे ही हैं, **येभ्यः** जिनसे **अस्यसि**-तू दीप्त होता है—इन सबमें तेरी महिमा का दर्शन होता है। २. हे प्रभो! **ते**-आपसे **न दूरम्** कुछ भी दूर नहीं है। हे **भव**-सर्वोत्पादक! **न ते परिष्ठा अस्ति**-कोई वस्तु आपको घेर लेनेवाली नहीं है। आप **सद्यः** शीघ्र ही **सर्वान् परिपश्यसि**-सबको देखते हैं। **पूर्वस्मात्**-पूर्वसमुद्र से लेकर **उत्तरस्मिन् समुद्रे** उत्तर समुद्र में होनेवाली **भूमिं हंसि** (हन् गतौ) भूमि को आप प्राप्त होते हैं—सारी भूमि पर व्याप्त हो रहे हैं।

भावार्थ—नक्र आदि सब बड़े बड़े जलचरों में प्रभु की महिमा प्रकट हो रही है। प्रभु प्रत्येक वस्तु के सदा सन्निहित हैं। सबका ध्यान करते हैं। सर्वत्र व्याप्त व सर्वत्र गतिवाले हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री**॥

तक्मा, विष, दिव्य अग्नि

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना।
अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम्॥ २६॥

१. हे **रुद्र**-दुष्टों को रुलानेवाले प्रभो! **नः** हमें **तक्मना**-जीवन को कष्टमय बनानेवाले ज्वर से **मा संस्राः** मत संसृष्ट कीजिए। **विषेण**-प्राणापहारी विष से **मा**-मत संसृष्ट कीजिए तथा **नः**-हमें **दिव्येन अग्निना**-अन्तरिक्ष में होनेवाली विद्युद्रूप अग्नि से **मा** मत संसृष्ट कीजिए। २. हे रुद्र! **एताम्**-इस **विद्युतम्**-विद्युत् को **अस्मत्** हमसे **अन्यत्र**-अन्य स्थान में **पातय**-गिराइए।

भावार्थ—हम पवित्र जीवनवाले बनते हुए सर्वत्र प्रभु की महिमा को देखें और ज्वर, विष व विद्युत्पतन द्वारा असमय में विनष्ट न हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री**॥

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम्।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः॥ २७॥

१. **भवः**-वह सर्वोत्पादक प्रभु **दिवः ईशे**=द्युलोक का ईश है। **भवः** वही प्रभु **पृथिव्याः** (ईशे) पृथिवी का स्वामी है। **भवः**-सर्वजनक प्रभु ही **उरु अन्तरिक्षम्**-इस विशाल अन्तरिक्ष को **आ पप्रे**=अपने तेज से आपूरित किये हुए हैं। **तस्मै**-उस भव के लिए **इतः**-इस

अपने स्थान से **यतमस्यां दिशि**-जिस भी दिशा में वे हैं, उन्हें **नमः**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उस त्रिलोकी में व्याप्त त्रिलोकी के अधिपति को हम सब दिशाओं में नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

श्रद्धा, निष्पक्षता व सुख

भवं राजन्यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड॥ २८॥

१. हे **भव**-सर्वोत्पादक! **राजन्**=सर्वशासक प्रभो! **यजमानाय**=यज्ञशील पुरुष के लिए **मृड**-आप सुख दीजिए। आप **हि**-निश्चय से **पशूनां पशुपतिः बभूथ**=सब पशुओं (प्राणियों) के रक्षक व स्वामी हैं। २. **यः**=जो **इति श्रद्दधाति**=इसप्रकार विश्वास रखता है कि **देवाः सन्ति**-आपकी दिव्यशक्तियाँ सर्वत्र सत्तावाली हैं, **अस्य**-इस श्रद्धालु के **द्विपदे**-दो पाँववाले मनुष्यों के लिए तथा **चतुष्पदे**=चार पाँववाले 'गौ, अश्व, अजा, अवि' आदि पशुओं के लिए **मृड**-सुख दीजिए। प्रभुशक्तियों की सार्वत्रिक सत्ता में विश्वास करनेवाला व्यक्ति पाप से बचता है और परिणामतः प्रभुकृपा का पात्र होता है।

भावार्थ—वे सर्वोत्पादक, सर्वशासक प्रभु यज्ञशील पुरुषों का रक्षण करते हैं। प्रभुशक्ति की सार्वत्रिक सत्ता का विश्वासी मनुष्य निष्पाप व सुखी जीवनवाला बनता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

पूर्ण जीवन

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः॥ २९॥

१. हे प्रभो! **नः**-हमारे **महान्तम्**-घर में बड़े व्यक्ति को **मा रीरिषः**=मत हिंसित कीजिए **उत**-और **नः**-हमारे **अर्भकम्**=छोटे को भी **मा**=मत मारिए। **नः**=हमारे **वहन्तम्**-गृहभार का वहन करनेवाले गृहपति को मत नष्ट कीजिए और **नः**=हमारे **वक्ष्यतः**=समीप-भविष्य में भार वहन करनेवाले युवक को भी **मा**=मत हिंसित कीजिए। २. **नः**-हमारे **पितरम्**-पिता **मातरं च**=व माता को **मा हिंसीः**=मत हिंसित कीजिए। हे **रुद्र**=सब दुःखों के द्रावक प्रभो! **नः**-हमारे **स्वां तन्वम्**=इस अपने शरीर को **मा (रीरिषः)**=मत नष्ट कीजिए।

भावार्थ—हम सब गृहवासी '**रुद्र**' प्रभु का स्मरण करें और पूर्ण आयुष्य को प्राप्त होनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**चतुष्पदाउष्णिक्**॥

श्वभ्यः नमः

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः। इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः॥ ३०॥

१. **रुद्रस्य**-शत्रुओं का रोदन करानेवाले रुद्र के लिए **ऐलवकारेभ्यः**=(ऐलवानि—इल प्रेरणे) प्रेरणायुक्त कर्मों को करनेवाले लोगों के लिए **नमः अकरम्**-मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार चलनेवालों के लिए नमस्कार करता हूँ **अ-संसूक्त-गिलेभ्यः**=अशुभ भाषणों को निगल जानेवालों के लिए—कभी अशुभ न बोलनेवाले **श्वभ्यः**=(श्वि गतिवृद्धयोः) गति द्वारा वृद्धि को प्राप्त करनेवाले इन आदरणीय पुरुषों के लिए **इदं(नमः अकरम्)**-नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उस रुद्र के इन पुरुषों के लिए मैं आदरपूर्वक प्रणाम करता हूँ जोकि (क) प्रभु प्रेरणायुक्त कर्मों को करते हैं। (ख) कभी अपशब्द नहीं बोलते। (ग) जिनके मुख से महनीय शब्दों का ही उच्चारण होता है। (घ) जो गति द्वारा उन्नति पथ पर बढ़ रहे हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भवादयो मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**विपरीतपादलक्ष्माषट्पदात्रिष्टुप्**॥

पवित्र-प्रणाम

नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नमः॑ संभु॒ञ्ज॒तीभ्यः॑।
नमस्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः॥ ३१॥

१. हे रुद्र! **ते** आपसे **घोषिणीभ्यः** प्रेरित वेदवाणियों की घोषणा करनेवाली **सेनाभ्यः** (स+इन स्वामी) सदा आपके साथ रहनेवाली (आपका स्मरण करनेवाली) इन प्रजाओं के लिए **नमः** हम नमस्कार करते हैं। हे प्रभो! **ते** आपकी इन **केशिनीभ्यः** प्रकाश की रश्मियोंवाली (केश A ray of light) प्रजाओं के लिए **नमः** नतमस्तक होते हैं। **नमस्कृताभ्यः** आपको प्रणाम करनेवाली इन प्रजाओं के लिए **नमः**-प्रणाम करते हैं। **संभुञ्जतीभ्यः**-मिलकर भोजन करनेवाली व सम्यक् पालन करनेवाली प्रजाओं के लिए **नमः**=प्रणाम है। २. हे **देव** प्रकाशमय प्रभो! **ते** आपकी इन (सेनाभ्यः) सदा आपके स्मरण के साथ गति करनेवाली प्रजाओं के लिए **नमः** हमारा नमस्कार हो। इसप्रकार **नः** हमें भी **स्वस्ति** कल्याण **च**-और **अभयम्**-निर्भयता प्राप्त हो।

भावार्थ—हम उन प्रजाओं को प्रणाम करते हैं जोकि (क) प्रभु प्रदत्त वेदवाणियों को घोषणा करती हैं। (ख) प्रकाश की रश्मियोंवाली हैं (ग) प्रभु को प्रणाम करनेवाली हैं (घ) सबका सम्यक् पालन करनेवाली व मिलकर खानेवाली हैं तथा (ङ) सदा प्रभुस्मरण के साथ निवासवाली हैं। इसप्रकार हम भी कल्याण व निर्भयता को प्राप्त करते हैं।

सदा प्रभु स्मरण के साथ रहनेवाले ये व्यक्ति अन्तर्मुखी वृत्तिवाले 'अथर्वा' (अथ अर्वाङ्) बनते हैं। यही अगले सूक्त का ऋषि है। ब्रह्म (ज्ञान) ही इनका भोजन होता है। इस ब्रह्मौदन (बार्हस्पत्यौदन) का एक विराट् शरीर के रूप में इस सूक्त में वर्णन है—

३. [तृतीयं सूक्तम्, प्रथमः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**१ आसुरीगायत्री; २ त्रिपदासमविषमागायत्री; ३ आसुरीपङ्क्तिः; ४ साम्न्यनुष्टुप्; ५ साम्न्युष्णिक; ६ आसुरीपङ्क्तिः**॥

'बृहस्पतिः शिरा'

तस्यौ॒दन॑स्य॒ बृह॒स्पति॒ः शिरो॒ ब्रह्म॒ मुख॑म्॥ १॥
द्यावा॑पृथि॒वी श्रोत्रे॒ सूर्या॑चन्द्र॒मसा॒वक्षि॑णी सप्तऋ॒षय॑ः प्राणापा॒नाः॥ २॥
चक्षुर्मुस॑लं॒ काम॑ उ॒लूख॑लम्॥ ३॥
दिति॒ः शूर्प॒मदि॑तिः शूर्पग्रा॒ही वातोऽपा॑विनक्॥ ४॥
अश्वा॒ः कणा॒ गाव॑स्तण्डु॒ला म॒शका॒स्तुषा॑ः॥ ५॥
कब्रु॒ फली॒कर॑णा॒ः शरो॒ऽभ्रम्॥ ६॥

१. **तस्य ओदनस्य**-उस ब्रह्मौदन के विराट् शरीर का **बृहस्पतिः शिरः** महान् लोकों का स्वामी प्रभु ही शिरःस्थानीय है, अर्थात् वह बृहस्पति ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। **ब्रह्म**-ज्ञान **मुखम्**-मुख है—इस ओदन के मुख से ब्रह्म (ज्ञान) की वाणियाँ उच्चरित होती हैं। इस ओदन के विराट् शरीर के **द्यावापृथिवी**-द्युलोक व पृथिवीलोक **श्रोत्रे** कान हैं। इसमें

द्युलोक से पृथिवीलोक तक सब लोक-लोकान्तरों का ज्ञान सुनाई पड़ता है। **सूर्याचन्द्रमसौ**=सूर्य और चाँद इस ओदन-शरीर की **अक्षिणी**=आँखें हैं। सूर्य व चन्द्र द्वारा ही यह ज्ञान प्राप्त होता है। दिन का अधिष्ठातृदेव सूर्य है, रात्रि का चन्द्र। हमें दिन रात इस ज्ञान को प्राप्त करना है। **सप्तऋषयः**-शरीरस्थ सप्तऋषि ही **प्राणापानाः** इसके प्राणापान हैं। '**कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्**'-दो कानों, दो नासिका छिद्रों, दो आँखों व मुख के द्वारा ही इस ओदन शरीर का जीवन धारित होता है। २. इस ओदन को तैयार करने के लिए **चक्षुः मुसलम्** आँख मूसल का कार्य करती है, **कामः**-इच्छा ही इसके लिए **उलूखलम्** ओखली है। प्रत्येक वस्तु को आँख खोलकर देखने पर वह वस्तु उस ब्रह्म की महिमा का प्रतिपादन कर रही होती है। इच्छा के बिना यह ज्ञान प्राप्त नहीं होता। **दितिः**-यह खण्डनात्मक जगत्—जिस जगत् में प्रतिक्षण छेदन-भेदन चल रहा है, वह कार्यजगत्—इस ओदन के लिए **शूर्पम्**=छाज होता है। **अदितिः**=मूल प्रकृति **शूर्पग्राही**=उस छाज को मानो पकड़े हुए है। **वातः**=यह वायु ही **अपाविनक्**=धान से तण्डुलों को पृथक् करनेवाला होता है। **अश्वाः कणाः**-इस ओदन के कण 'अश्व' हैं, **गावः तण्डुलाः**-ओदन के उपादानभूत तण्डुल गौवें हैं। **मशकाः तुषाः**=अलग किये हुए तुष (भूसी) मशक आदि क्षुद्र जन्तु हैं। **कब्रु**-(कब् to colour) चित्रित प्राणी या जगत् इस ओदन के **फलीकरणाः**-(Husks separated from the grain) छिलके हैं तथा **अभ्रं शरः** मेघ ऊपर आई हुई पपड़ी (Cream) की भाँति हैं।

भावार्थ—प्रभु ने वेदज्ञान दिया। इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है। इसमें 'द्युलोक, पृथिवीलोक, सूर्य चन्द्र, सप्तर्षि, चक्षु, काम, दिति, अदिति, वात, अश्व, गौ, मशक, चित्रित जगत् (प्राणी) व मेघ' इन सबका वर्णन उपलभ्य है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः** ॥ छन्दः—**७ प्राजापत्यानुष्टुप्; ८ साम्न्यनुष्टुप्; ९ आसुर्यनुष्टुप्; १० आसुरीपङ्क्तिः** ॥

धातुएँ व कृषिसम्बद्ध पदार्थ

श्यामम॑यो॒ऽस्य मां॒सानि॒ लोहि॑तमस्य॒ लोहि॑तम्॥ ७॥
त्रपु॑ भस्म॒ हरि॑तं॒ वर्णः॒ पुष्क॑रमस्य ग॒न्धः॥ ८॥
खलः॒ पात्रं॒ स्फ्यावंसा॑वी॒षे अ॑नू॒क्ये॑ ॥ ९॥
आ॒न्त्राणि॑ ज॒त्रवो॑ गु॒दा॑ व॒र॒त्राः॥ १०॥

१. **अस्य**-इस ब्रह्मौदन के विराट् शरीर के **श्यामम् अयः**-काले वर्ण का लोहधातु **मांसानि**-मांस स्थानापन्न है। **लोहितम्**=(अयः) लालवर्ण के ताम्र आदि धातु **अस्य लोहितम्**-इसका रुधिर ही है। **त्रपु**=सीसा **भस्म** ओदनपाक के अनन्तर रहनेवाली राख ही है। **हरितम्**-मनोहारिवर्णवाला हेम (सोना) इसका **वर्णः**=वर्ण है। **पुष्करम्**=कमल **अस्य गन्धः**=इस ओदन का गन्ध है। २. **खलः** व्रीहि आदि धान्यों का पलाल से पृथक् करने का स्थान **पात्रम्**-यह ओदन का पात्र है। **स्फ्यौ**=दोनों 'स्फ्य' नामक यज्ञसाधन (A sword shaped implement used in sacrifices) इसके **अंसौ**=कँधे हैं। **ईषे**-शकट सम्बन्धी दण्ड इसके **अनूक्ये**-कन्धे व मध्यदेह के संधि-स्थल हैं, पृष्ठास्थिविशेष हैं। **जत्रवः**=जोत इसकी **आन्त्राणि** आँतें हैं, **वरत्राः**-रज्जुएँ **गुदाः**=गुदा स्थानापन्न हैं।

भावार्थ—वेद में जहाँ 'लोहा, तांबा, सीसा, सोना' आदि धातुओं के वर्णन के साथ कमल आदि पुष्पों का वर्णन उपलभ्य है, वहाँ कृषक के साथ सम्बद्ध 'खल, स्फ्य, ईषा, जत्रु, वरत्र' आदि वस्तुओं का भी प्रतिपादन है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बर्हास्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**११ भुरिगार्च्यनुष्टुप्; १२ याजुषीजगती; १३ साम्न्युष्णिक्**॥

ब्रह्मौदन का पाचन

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम्॥ ११॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम्॥ १२॥

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्यो ऽ पसेचनम्॥ १३॥

१. **राध्यमानस्य ओदनस्य**-पकाये जा रहे ब्रह्मौदन की **इयम् पृथिवी एव**-यह पृथिवी ही **कुम्भी भवति**-देगची होती है और **द्यौः अपिधानम्** द्युलोक उस कुम्भी के मुख का छादक-पात्र-ढकना बनता है। इसप्रकार यह ब्रह्मौदन इस द्यावापृथिवी के सारे अन्तराल को व्याप्त करके वर्त्तमान हो रहा है। इसमें सब पिण्डों व पदार्थों का ज्ञान दिया गया है। **सीताः**-कर्षण से उत्पन्न, बीज का जिनमें आवपन होता है, वे लांगल पद्धतियाँ इस ओदन के विराट् शरीर की **पर्शवः** पार्श्व-स्थियाँ हैं। **सिकताः** रेतःकण **ऊबध्यम्** उदरगत अजीर्ण अन्न के मल के समान हैं। २. **ऋतम्**-सत्य या व्यवस्थित (right) जीवन ही **हस्तावनेजनम्**-हाथ धोने का जल है। **कुल्या** कुलों के लिए हितकर नीति इस ओदन का **उपसेचनम्**-मिश्रणसाधन-सेचन जल है।

भावार्थ—वेद द्युलोक से पृथिवीलोक तक सब पिण्डों का प्रतिपादन करता है। यहाँ 'सीता, सिकता, ऋत व कुल्या' इन सबका प्रतिपादन है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**१४ आसुरीगायत्री; १५ साम्न्युष्णिक्; १६ आसुरीबृहती**॥

कुम्भी का अग्नि पर स्थापन

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता॥ १४॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा॥ १५॥

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः॥ १६॥

१. **कुम्भी** ब्रह्मौदन के पाचन की साधनभूत 'द्युलोकरूप ढक्कनवाली पृथिवीरूप कुम्भी' **ऋचा अधिहिता**-ऋग्वेद के मन्त्रों से अग्नि के ऊपर स्थापित होती है। **आर्त्विज्येन**-(ऋत्विजः अध्वर्यवः) ऋत्विक् सम्बन्धी कर्मों के प्रतिपादक यजुर्वेद से **प्रेषिता** अग्नि के प्रति भेजी जाती है। **ब्रह्मणा परिगृहीता**-आथर्वण ब्रह्मवेद से यह परितः धारित होती है और **साम्ना पर्यूढा** साममन्त्रों से अंगारों से परिवेष्टित की जाती है। २. उस समय **बृहत्**-बृहत्साम **आयवनम्**-उदक में प्रक्षिप्त तण्डुलों का मिश्रणसाधन काष्ठ होता है और **रथन्तरम्** रथन्तरसाम **दर्विः** ओदन के उद्धरण की साधनभूत कड़छी होती है।

भावार्थ—इस ब्रह्मौदन का पाचन 'ऋग्, यजुः, साम व अथर्व' मन्त्रों से होता है तथा 'बृहत् रथन्तर' आदि साम इस ओदन-पाचन के साधन बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**आसुर्यनुष्टुप्**॥

ब्रह्मौदन के पक्ता (पाचक)

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते॥ १७॥

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मो३ऽभीन्धे॥ १८॥

१. **ऋतवः**-ऋतुएँ **पक्तारः**-इस ओदन को पकानेवाली हैं। ज्ञानरूप ओदन का पाक काल के अधीन तो है ही। **आर्तवाः**-ऋतु-सम्बन्धी अहोरात्र **समिन्धते**-इसे सन्दीप्त करते हैं। ब्रह्मौदन

के पकाने की साधनभूत ज्ञानाग्नि को दीप्त करते हैं। दिन-रात्रि में परिवर्तन के साथ ज्ञान में वृद्धि होती चलती है। २. **पञ्चबिलम् चरुम्**-'गौ, अश्व, पुरुष, अजा, अवि' रूप पञ्चधा विभिन्न मुखवाली ब्रह्मौदन (चरु) के पाचन की साधनभूत स्थाली को **घर्मः**-यह आदित्य **अभीन्धे** सम्यक् दीप्त करता है। ज्ञानाग्नि को दीप्त करने में सूर्य का प्रमुख स्थान है। सूर्य-किरणें केवल शरीर के स्वास्थ्य को ही नहीं बढ़ातीं, बुद्धि को भी स्वस्थ करती हैं।

भावार्थ—ऋतुएँ, ऋतु-सम्बन्धी अहोरात्र तथा सूर्य किरणें हमारी बुद्धि की वृद्धि का साधन बनती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**प्राजापत्यानुष्टुप्**॥

'सर्वलोकावाप्ति' रूप ओदनफल

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः॥ १९॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः॥ २०॥
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः॥ २१॥

१. **ओदनेन**-इस ज्ञान के ओदन से (यज्ञैः प्राप्तव्यत्वेन उच्यमानाः—'वचेः विच्चिरूपम्') **यज्ञवचः**-यज्ञों से प्राप्तव्यरूप में कहे गये **सर्वे लोकाः**-सब लोक **समाप्याः**-प्राप्त करने योग्य होते हैं। ज्ञान-प्राप्ति से उन सब उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है, जो लोक कि यज्ञों से प्राप्तव्य हैं। २. यह ओदन वह है **यस्मिन्**-जिसमें **समुद्रः**=अन्तरिक्ष, **द्यौः भूमिः**=द्युलोक व पृथिवीलोक **त्रयः**=तीनों ही **अवरपरम्**-उत्तराधारभाव से—एक नीचे दूसरा ऊपर, इसप्रकार **श्रिताः**=स्थित हैं। इस ओदन में लोकत्रयी का ठीकरूप में ज्ञान दिया गया है। ३. यह ओदन वह है **यस्य**=जिसके—जिससे प्रतिपादित—**उच्छिष्टे**-(ऊर्ध्वं शिष्टे) प्रलय से भी बचे रहनेवाले प्रभु में **षट् अशीतयः**=(अश् व्याप्तौ) 'पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर नीचे' इन छह दिशाओं में व्याप्तिवाले—इनमें रहनेवाले **देवाः**-सूर्यचन्द्र आदि सब देव **अकल्पन्त**-सामर्थ्यवान् बनते हैं।

भावार्थ—ज्ञान से उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। इस वेदज्ञान में लोकत्रयी का ज्ञान उपलभ्य है। इसमें उस प्रभु का प्रतिपादन है, जिसके आधार से सूर्य आदि सब देव शक्तिशाली बनते हैं। (तस्य भासा सर्वमिदं विभाति)।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**बार्हस्पत्यौदनः**॥ छन्दः—**२२ प्राजापत्यानुष्टुप्; २३ आसुरीबृहती; २४ त्रिपदाप्राजापत्याबृहती; २५ साम्न्युष्णिक्**॥

न अल्पः, न अनुपसेचनः

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान्॥ २२॥
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात्॥ २३॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति॥ २४॥
यावद्दाताऽभिमनस्येत तन्नाति वदेत्॥ २५॥

१. वेदज्ञान को यहाँ 'ब्रह्मौदन' कहा गया है। इस ब्रह्मौदन का सर्वमहत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय प्रभु हैं, अतः एक आचार्य से जिज्ञासु (विद्यार्थी) कहता है कि **तं त्वा**-उन आपसे मैं **ओदनस्य**-ओदन के विषय में **पृच्छामि**=पूछता हूँ, **यः**-जो **अस्य**-इस ब्रह्मौदन की **महान् महिमा**=महनीय महिमा है। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय प्रभु के विषय में मैं आपसे पूछता हूँ। २. आचार्य उत्तर देते हुए कहते हैं कि **सः**-वह **यः**=जो **ओदनस्य**-इस ब्रह्मौदन की **महिमानम्**-महिमा को—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय को **विद्यात्**-जाने वह **इति**

ब्रूयात्=इतना ही कहे (कह सकता है) कि **न अल्पः** -वे प्रभु अल्प नहीं हैं—सर्वमहान् हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं। **न अनुपसेचनः इति** वे उपासक को आनन्द से सिक्त न करनेवाले नहीं। प्रभु उपासक को आनन्द से सर्वतः सिक्त कर देते हैं। उपासक एक अवर्णनीय आनन्द का अनुभव करता है। वह उस प्रभु के विषय में यही कह सकता है कि **इदं च किञ्च न इति** वे प्रभु यह जो कुछ प्रत्यक्ष दिखता है, वह नहीं है। 'आँखों से दिखनेवाले व कानों से सुनाई पड़नेवाले व नासिका से घ्राणीय, जिह्वा से आस्वादनीय व त्वचा से स्पर्शनीय' वे प्रभु नहीं है। वे 'यह नहीं है—यह नहीं हैं' यही उस ओदन की महान् महिमा के विषय में कहा जा सकता है। ३. **दाता** -ब्रह्मज्ञान देनेवाला **यावत्** जितना **अभिमनस्येत** -उस ब्रह्म के विषय में मन से विचार करे, **तत् न अतिवदेत्** उससे अधिक न कहे, अर्थात् ब्रह्म के विषय में मनन पर ही वह अधिक बल दे और जितना उसका मनन कर पाये उतना ही जिज्ञासु से कहे।

भावार्थ—वेदज्ञान का मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'ब्रह्म' है। ब्रह्म के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि वह 'सर्वमहान्' हैं, आनन्ददाता हैं, इन्द्रियों का विषय नहीं हैं। हमें उसके मनन का ही प्रयत्न करना है। उसका शब्दों से ज्ञान देना कठिन है।

ऋषिः **अथर्वा** ॥ देवता **बार्हस्पत्यौदनः** ॥ छन्दः—**२६ आर्च्युष्णिक्; २७, २८ साम्नीबृहती; २९ भुरिक्साम्नीबृहती; ३० याजुषीत्रिष्टुप्; ३१ अल्पशःपङ्क्तिरुतयाजुषी** ॥

पराञ्चं+प्रत्यञ्चम् (न अहम्; न माम्)

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति॥ २६॥
त्वमोदनं प्राशी३स्त्वामोदना३ इति॥ २७॥
पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह॥ २८॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह॥ २९॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः॥ ३०॥
ओदन एवौदनं प्राशीत्॥ ३१॥

१. **ब्रह्मवादिनः** ज्ञान का प्रतिपादन करनेवाले **वदन्ति** प्रश्न करते हुए कहते हैं कि तूने **पराञ्चम्** (पर अञ्च्) परोक्ष ब्रह्म में गतिवाले **ओदनम्** -ज्ञान के भोजन को **प्राशीः** खाया है, अर्थात् पराविद्या को ही प्राप्त करने का यत्न किया है अथवा **प्रत्यञ्चम् इति**- (प्रति अञ्च्) अपने अभिमुख—सामने उपस्थित इन प्रत्यक्ष पदार्थों का ही, अर्थात् अपराविद्या को ही जानने का यत्न किया है? एक प्रश्न वे ब्रह्मवादी और भी करते हैं कि यह जो तू संसार में भोजन करता है तो क्या **त्वम् ओदनं प्राशीः** तूने भोजन खाया है, या **ओदनः त्वाम् इति** इस ओदन ने ही तुझे खा डाला है? २. प्रश्न करके वे ब्रह्मवादी ही समझाते हुए **एनं आह** इस ओदनभोक्ता से कहते हैं कि **पराञ्चं च एनं प्राशीः** (च एव) यदि तू केवल परोक्ष ब्रह्म का ज्ञान देनेवाले इस ज्ञान के भोजन को ही खाएगा तो **प्राणाः त्वा हास्यन्ति इति** प्राण तुझे छोड़ जाएँगे, अर्थात् तू जीवन को धारण न कर सकेगा और वे **एनं आह**-इसे कहते हैं कि **प्रत्यञ्चं च एनं प्राशीः** केवल अभिमुख पदार्थों का ही ज्ञान देनेवाले इस ओदन को तू खाता है तो **अपानाः त्वा हास्यन्ति इति** दोष दूर करने की शक्तियाँ तुझे छोड़ जाएँगी, अर्थात् केवल ब्रह्मज्ञानवाला मृत ही हो जाएगा, और केवल प्रकृतिज्ञानवाला दूषित जीवनवाला हो जाएगा। ३. इसी प्रकार सांसारिक भोजन के विषय में वह कहता है कि **न एव अहम् ओदनम्** न तो मैं ओदन को खाता हूँ और **न माम् ओदनः** -न ओदन मुझे खाता है। अपितु **ओदनः एव** यह अन्न का विकार अन्नमयकोश ही **ओदनं प्राशीत्** अन्न खाता है, अर्थात् जितनी इस अन्नमयकोश की आवश्यकता

होती है, उतने ही अन्न का यह ग्रहण करता है। मैं स्वादवश अन्न नहीं खाता। इसीलिए तो यह भी मुझे नहीं खा जाता। स्वादवश खाकर ही तो प्राणी रोगों का शिकार हुआ करता है।

भावार्थ—हम परा व अपराविद्या दोनों को प्राप्त करें। अपराविद्या के अभाव में जीवनधारण सम्भव न होगा और पराविद्या के अभाव में जीवन दोषों से परिपूर्ण हो जाएगा, क्योंकि तब हम प्राकृतिक भोगों में फँस जाएँगे। इसी बात को इसप्रकार कहते हैं कि शरीर की आवश्यकता के लिए ही खाएँगे तब तो ठीक है, यदि स्वादों में पड़ गये तो इस अन्न का ही शिकार हो जाएँगे।

३. [तृतीयं सूक्तम्, द्वितीयः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, दैवीजगती, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्** ॥

बृहस्पतिना शीर्ष्णा

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३२॥

१. '३।१।१' में कहा था कि ओदन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय (शिरःस्थानीय विषय) 'बृहस्पति=सर्वज्ञ प्रभु' ही है। उसी पर बल देने के लिए कहते हैं कि **ततः च**=और तब जबकि वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वह सब महान् लोकों का रक्षक (बृहतामाकाशादीनां पतिः) सर्वज्ञ प्रभु है, **च**-और **येन**=जिस बृहस्पतिरूप सिर से **पूर्वे ऋषयः**-अपना पालन व पूरण करनेवाले, वासनाओं का संहार (ऋष् to kill) करनेवाले ज्ञानियों ने **एतं प्राश्नन्** इस ब्रह्मौदन को खाया तो यदि तू **एनम्**=इस ब्रह्मौदन को **अन्येन च शीर्ष्णा**-बृहस्पति से भिन्न सिर से **प्राशीः**=खाता है—यदि तू इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म को न जानकर कुछ और ही समझता है तो ब्रह्मज्ञ आचार्य **एनम् आह**=इस शिष्य से कहता है कि **ते**=तेरी **प्रजा**=सन्तान **ज्येष्ठतः**=ज्येष्ठादि क्रम से **मरिष्यति इति**=विनष्ट हो जाएगी। **अहम्**=मैंने जो **तम्**=उस ओदन को **वै**-निश्चय से **न अर्वाञ्चम्**=न केवल यहाँ—नीचे (पृथिवी) के विषयों का ज्ञान देनेवाला (अर्वाङ् अञ्चन्तम्) **न पराञ्चम्**=न दूर के (द्युलोक के ही) पदार्थों का ज्ञान देनेवाला (परा अञ्चन्तम्) तथा **न प्रत्यञ्चम्** न ही (प्रति अञ्चन्तम्) केवल सामने के—अन्तरिक्षस्थ पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जाना है अपितु **तेन**=उस **बृहस्पतिना शीर्ष्णा**='ब्रह्म' ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, शिरःस्थानीय है, इसप्रकार मानकर **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **तेन एनं अजीगमम्**-उस बृहस्पतिरूप सिर से ही मैंने इसे प्राप्त किया है। २. **एषः ओदनः**-यह ब्रह्मौदन **वै**-निश्चय से **सर्वाङ्गः**=सम्पूर्ण अंगोंवाला **सर्वपरुः**=सम्पूर्ण पर्वों-(अवयव-सन्धियों)-वाला व **सर्वतनूः**=सम्पूर्ण (whole स्वस्थ) शरीरवाला है। **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार इस ब्रह्मौदन को समझ लेता है वह **सर्वाङ्गः एव**=सब अंगोंवाला ही **सर्वपरुः**=सम्पूर्ण अवयवसन्धियोंवाला व **सर्वतनूः**=स्वस्थ शरीरवाला **संभवति**=होता है, पुण्यलोकों में जन्म लेता है।

भावार्थ—हमें वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म को ही जानना। यह वेद केवल पृथिवी के, द्युलोक के व सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष लोक के ही पदार्थों का वर्णन नहीं करता। इसे तो यही

समझकर पढ़ना कि इन सब वाणियों का अन्तिम तात्पर्य उस प्रभु में है। इसप्रकार पढ़ने पर यह हमें पूर्ण स्वस्थ बनाएगा और हमारी सन्तानें भी दीर्घजीवी होंगी।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीबृहती, आसुरीजगती**॥

द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३३॥

१. **ततः च**-और तब **एनम्** इस ब्रह्मौदन को **याभ्यां श्रोत्राभ्याम्** जिन द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रों से **पूर्वे ऋषयः**-पालन व पूरण करनेवाले, वासनाओं के संहारक तत्त्वद्रष्टा पुरुषों ने **प्राश्नन्** खाया—ग्रहण किया, **अन्याभ्याम्**-उससे भिन्न द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रों से **प्राशीः**-ग्रहण करेगा तो वह तत्त्वद्रष्टा **एनम् आह**-इसे कहता है कि **बधिरःभविष्यसि इति**-अपनी श्रोत्रशक्ति को नष्ट कर बैठेगा। **अहम्**-मैंने तो **तम्**-उस ओदन को **वै**=निश्चय से **न अर्वाञ्चम्**-न केवल यहाँ—नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न पराञ्चम्**-न दूर के—द्युलोक के ही पदार्थों का ज्ञान देनेवाला **न प्रत्यञ्चम्**-न सम्मुख—अन्तरिक्ष के ही पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जाना है। अपितु **ताभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्**-उन द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रों के हेतु से ही **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन का ग्रहण किया है, **ताभ्याम्**=उन द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रों के हेतु से ही **एनं अजीगमम्**=इस ब्रह्मौदन को प्राप्त हुआ हूँ। इन श्रोत्रों के द्वारा ही तो मुझे ब्रह्म की महिमा का श्रवण करना है। २ **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने इस वेदज्ञान को द्यावापृथिवीरूप श्रोत्रों से ग्रहण किया। इसमें दिया गया द्यावापृथिवी का ज्ञान उनके लिए ब्रह्म का ज्ञान देनेवाला हुआ। इससे उन्होंने ब्रह्म की महिमा को जाना। यदि यह द्यावापृथिवी का ज्ञान हमें ब्रह्म की महिमा को सुनानेवाला नहीं हुआ तो 'बधिर' ही तो रहे, अतः हम इनके ज्ञान में प्रभु महिमा का श्रवण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीपङ्क्तिः, आसुरीत्रिष्टुप्**॥

सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् अक्षीभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३४॥

१. **ततः च**=और तब **याभ्यां च अक्षीभ्याम्**-जिन सूर्य व चन्द्ररूप आँखों से **पूर्वे ऋषयः**-अपना पालन व पूरण करनेवाले, वासनाओं के संहारक तत्त्वद्रष्टा पुरुषों ने **एतम्**=इस ब्रह्मौदन का **प्राश्नन्**=सेवन किया, **अन्याभ्याम्**=उनसे भिन्न आँखों से **एनं प्राशीः**=इसको तू खाता है तो **एनं आह**-वह तत्त्वद्रष्टा इससे कहता है कि **अन्धः भविष्यसि इति**-तू अन्धा हो

जाएगा। **तं अहम्**=उस तत्त्वज्ञान को निश्चय से मैं **न अर्वाञ्चम्**=न केवल यहाँ—नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न पराञ्चम्**=न सुदूर द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न प्रत्यञ्चम्**=और न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जानता हूँ। **ताभ्याम् उन सूर्याचन्द्रमसाभ्यां अक्षीभ्याम्**=सूर्यचन्द्ररूप आँखों से **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन का ग्रहण करता हूँ। **ताभ्यां एनम् अजीगमम्**=उन नेत्रों से ही इसे प्राप्त करता हूँ। यह सूर्यचन्द्र का ज्ञान मेरे लिए ब्रह्मदर्शन का साधन बनता है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—तत्त्वद्रष्टा ऋषि इस वेदवाणी को सूर्यचन्द्र की आँखों से देखते हैं। इसमें दिया गया सूर्य-चन्द्र का ज्ञान उनके लिए ब्रह्म का ज्ञान देनेवाला होता है। सूर्य व चन्द्र में वे ब्रह्म की महिमा को देखते हैं। जो इन सूर्य व चन्द्र में ब्रह्म की महिमा को नहीं देखता, वह अन्धा ही तो है, अतः हम सूर्य व चन्द्र में प्रभु की प्रभा को देखने का यत्न करें।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसूर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, याजुषीगायत्री** ॥

ब्रह्मणा मुखेन

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३५॥

१. **ततः च**=और तब **येन च मुखेन**=जिस मुख से **एतम्**=इस ब्रह्मौदन को **पूर्वे ऋषयः**=अपना पालन व पूरण करनेवाले, वासनाओं का संहार करनेवाले तत्त्वद्रष्टा ज्ञानियों ने **प्राश्नन्**=ग्रहण किया, **अन्येन**=उससे भिन्न मुख से **प्राशीः**=तू इस ओदन को खाता है, तो **एनं आह**=इसे वह तत्त्वद्रष्टा कहता है कि **मुखतः ते प्रजा मरिष्यति इति**=(अभिमुखप्रदेशे—सा०) तेरे सामने ही तेरी प्रजा मरेगी। **अहं वै तम्**=मैं तो निश्चय से उस ब्रह्मौदन को **न अर्वाञ्चम्**=न केवल नीचे—पृथिवी आदि पदार्थों को ज्ञान देनेवाला, **न पराञ्चम्**=न ही दूरस्थ द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और **न प्रत्यञ्चम्**=न सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला समझता हूँ। मैंने तो **तेन ब्रह्मणा मुखेन**=उस ब्रह्मरूप मुख से ही **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **तेन**=उस ब्रह्म-मुख से ही **एनं अजीगमम्**=इसे पाया है। परमात्मा से दिये गये मुख से मैंने वेदवाणियों का उच्चारण करते हुए उस ब्रह्म को जाना है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम ज्ञान को ही ब्रह्मौदन के विराट् शरीर का मुख स्थानीय समझते हुए ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्नशील हों। अन्यथा हम विषय-प्रवण होकर मुख से अशुभ शब्दों को बोलते हुए अपनी प्रजाओं को ही नष्ट करनेवाले बनेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीबृहती** ॥

अग्नेः जिह्वया

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।

अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३६॥

१. **ततः च**-और तब **यया च जिह्वया**-जिस जिह्वा से, दृष्टिकोण से **पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्**-पालन व पूरण करनेवाले तत्त्वद्रष्टा ज्ञानियों ने इस भोजन को खाया, **अन्यया**-उससे भिन्न जिह्वा से, अर्थात् भिन्न दृष्टिकोण **एनं प्राशीः**-इस ओदन को खाएगा, तो वह ब्रह्मज्ञ **एनं आह**-इससे कहता है कि **ते जिह्वा मरिष्यति**-तेरी जिह्वा नष्ट हो जाएगी। **अहम्**=मैं तो **वै**-निश्चय से **तम्**=उस ब्रह्मज्ञान को **न अर्वाञ्चम्**-न केवल नीचे—पृथिवी के ही पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न पराञ्चम्** न दूरस्थ द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और **न प्रत्यञ्चम्**=न सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष के ही पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। मैं तो **तया अग्नेः जिह्वया** उस अग्नि की जिह्वा से **एनं प्राशिषम्**-इस ब्रह्मौदन को खाता हूँ **तया**=उसी से **एनम् अजीगमम्** इसे प्राप्त हुआ हूँ। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—ब्रह्मौदन के विराट् शरीर की जिह्वा पर 'अग्नि' है। मैं अग्निदेव के गुणों को समझता हुआ इस अग्निदेव में भी उस ब्रह्म का तेज देखता हूँ। वेद अग्नि का ज्ञान देता हुआ इस ब्रह्म का ही ज्ञान देता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, साम्नीपङ्क्तिः, आसुरीपङ्क्तिः, दैवीपङ्क्तिः**॥

ऋतुभिः दन्तैः

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।

दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।

ऋतुभिर्दन्तैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३७॥

१. **ततः च**=और तब **यैः च दन्तैः**-जिन दाँतों से **एतम्**-इस ब्रह्मौदन को **पूर्वे ऋषयः** पालन व पूरण करनेवाले, वासनाओं का संहार करनेवाले ऋषियों ने **प्राश्नन्**-खाया, **अन्यैः**=उनसे भिन्न दाँतों से—भिन्न दृष्टिकोण से जो **एनं प्राशीः**=इस ब्रह्मौदन को खाता है, तो वह तत्त्वद्रष्टा **एनम् आह** इसे कहता है कि **ते दन्ताः शत्स्यन्ति**-तेरे दाँत टूट जाएँगे। **तं वै अहम्**=उस ब्रह्मौदन को निश्चय से मैं तो **न अर्वाञ्चम्**-न केवल नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न पराञ्चम्**-न ही दूरस्थ द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और **न प्रत्यञ्चम्**-न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। मैंने तो **एनम्**=इस ब्रह्मौदन को **तैः ऋतुभिः दन्तैः**=उन ऋतुरूप दाँतों से **प्राशिषम्**-खाया है। दो दो मासों में बनी हुई ये ऋतुएँ मानो ऊपर व नीचे की दन्तपंक्तियाँ हैं। **तैः** उनके द्वारा मैंने **एनं अजीगमम्**-इस ब्रह्मौदन को प्राप्त किया है, अर्थात् सब ऋतुओं में ज्ञान को प्राप्त करते हुए ज्ञान का वर्धन किया है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—ऋषि लोग सब ऋतुओं में ज्ञान प्राप्त करने के लिए यत्नशील होते हैं। सब ऋतुएँ वे दाँत हैं, जिनसे कि ब्रह्मौदन खाया जाता है। यदि हमारे दाँत इन ज्ञान की वाणियों के उच्चारण में व्यापृत नहीं होते और व्यर्थ के स्वादिष्ट भोजनों को ही करते हैं तो वे दाँत शीघ्र नष्ट हो

जाते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, प्राजापत्यागायत्री** ॥

सप्तर्षिभिः प्राणापानैः

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३८॥

१. **ततः च**=और तब **यैः च प्राणापानैः**=जिन प्राणापानों से **पूर्वे ऋषयः**=पालन करनेवाले ऋषियों ने **एतं प्राश्नन्**=इस ब्रह्मौदन को खाया, **अन्यैः**=उनसे भिन्न प्राणापानों से **एनं प्राशीः**=इस ब्रह्मौदन को तू खाता है, तो वह ब्रह्मज्ञानी **एनम् आह**=इसे कहता है कि **प्राणापानाः त्वा हास्यन्ति**=प्राण और अपान तुझे छोड़ जाएँगे। प्राणापान की शक्ति को ठीक रखने में इस ब्रह्मौदन का सेवन सहायक है। **अहं वै तम्**=मैं तो निश्चय से उस ब्रह्मौदन को **न पराञ्चं न अर्वाञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल पृथिवी के, न ही द्युलोक के और न सम्मुखस्थ इस अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। यह इन सब लोकों के पदार्थों का ज्ञान देता हुआ ब्रह्म का ज्ञान दे रहा है। मैंने **तैः**=उन **सप्तर्षिभिः प्राणापानैः**=दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुखरूप सप्तर्षिभूत प्राणापानों के द्वारा **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **तैः एनं अजीगमम्**=उन सप्तर्षियों से इसे प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम दो कानों, नासिका-छिद्रों, आँखों व मुखरूप सप्तर्षियों द्वारा ज्ञान प्राप्ति का यत्न करें। अन्यथा इनकी शक्ति क्षीण हो जाएगी। वेद का स्वाध्याय प्राणापान की शक्ति को ठीक रखनेवाला होता है।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, प्राजापत्यागायत्री, आसुर्युष्णिक्** ॥

अन्तरिक्षेण व्यचसा

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
अन्तरिक्षेण व्यचसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ३९॥

१. **ततः च**=और तब **येन च व्यचसा**=जिस विस्तार (Expance, vastness) के हेतु से निश्चयपूर्वक **एतम्**=इस ब्रह्मौदन को **पूर्वे ऋषयः**=पालन व पूरण करनेवाले तत्त्वद्रष्टाओं ने **प्राश्नन्**=खाया, **अन्येन**=उससे भिन्न विस्तार के दृष्टिकोण से **एनं प्राशीः**=इसे तू खाता है, तो वह ज्ञानी **एनम् आह**=इससे कहता है कि **राजयक्ष्मः त्वा हनिष्यति इति**=राजयक्ष्मा तुझे नष्ट कर डालेगा। **अहम्**=मैंने तो **तं वै**=उस ब्रह्मौदन को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल यहाँ—नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, न सुदूर द्युलोक के पदार्थों

का ज्ञान देनेवाला और न ही केवल सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जाना है। मैंने **एनम्**-इसे **तेन अन्तरिक्षेण व्यचसा**-उस हृदयान्तरिक्ष के विस्तार के हेतु से **प्राशिषम्**-खाया है, **तेन एनं अजीगमम्**-उसी के हेतु से प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेदज्ञान को हृदयान्तरिक्ष के विस्तार के हेतु से प्राप्त करें। यदि हमारा उद्देश्य केवल ऐश्वर्य व विलास के विस्तार का बना, तो हम ऐश्वर्य विस्तार के साथ विलास-पंक में डूबकर राजयक्ष्मा आदि रोगों के शिकार हो जाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीबृहती, दैवीपङ्क्तिः**॥

दिवा पृष्ठेन

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
विद्युत्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४०॥

१. **ततः च**-और तब **एतम्**-इस ब्रह्मौदन को **येन च पृष्ठेन**-निश्चय से जिस ज्ञान व प्रकाश के सेचन (पृषु to sprinkle) के हेतु से **पूर्वे ऋषयः प्राश्नन्** पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने खाया, **अन्येन** उससे भिन्न धन आदि सेचन के हेतु से **एनं प्राशी**-इसे खाता है, तो वह तत्त्वद्रष्टा **एनम् आह**-इससे कहता है कि **विद्युत् त्वा हनिष्यति इति**-बस, यह धन की चमक (विद्युत्) ही तुझे मार डालेगी। **अहम्** मैं तो **वै तम्**-निश्चय से उसे **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्** न केवल पृथिवी के, न केवल सुदूर द्युलोक के और न ही केवल सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जानता हूँ और **तेन दिवा पृष्ठेन**=उस ज्ञानदीप्ति के हेतु से ही **एनं प्राशिम्** इसे मैंने खाया है, **तेन एनम् अजीगमम्**-उसी हेतु से इसे प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हमें इस ब्रह्मौदन को अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को ज्ञानसिक्त करने के उद्देश्य से ही खाना है। धन आदि के विस्तार का उद्देश्य होने पर इस धन की चमक ही हमें खा जाएगी।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आसुरीपङ्क्तिः**॥

पृथिव्या उरसा

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
पृथिव्योरसा। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४१॥

१. **ततः च**-और तब **येन उरसा**=जिस ब्रह्मौदन के विराट् शरीर की छातीरूप पृथिवी के उद्देश्य से **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं च प्राश्नन्**-इस ब्रह्मौदन को निश्चय से खाया, **अन्येन**-उससे भिन्न अन्य उद्देश्य से **एनम्**-इस ब्रह्मौदन को **प्राशीः**-तू खाता है, तो **एनं आह**-वह ज्ञानी इसे कहता है कि **कृष्या न रात्स्यसि इति**-कृषि के द्वारा तू संसिद्धि को प्राप्त

न करेगा। कृषि ही तो तेरी जीवन-यात्रा की सहायक है। '**कृषिमित् कृषस्व**'-अवश्य कृषि करनेवाला बन, यही तो वेदोपदेश है। **अहम्**=मैं तो **तं वै**=उस वेदज्ञान को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल पृथिवी के, न केवल द्युलोक के और न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जानता हूँ। मैंने तो **तेन पृथिव्या उरसा**=उस पृथिवी को ही इस ब्रह्मौदन के विराट् शरीर की छाती जानकर **प्राशिषम्**=इसे खाया है, **तेन एनं अजीगमम्**=उसी हेतु से प्राप्त किया है। जिस प्रकार माता के उर:स्थल पर ही बच्चे का पालन होता है, उसी प्रकार इस पृथिवी पर ही हमारा पालन होता है। यहाँ कृषि को सिद्ध करके हमें ओषधि, वनस्पतियों को प्राप्त करके जीवन-यात्रा की पूर्ति के लिए इस शरीर-रथ को सदा ठीक रखना है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेदज्ञान को प्राप्त करके इस पृथिवीमाता के उर:स्थल से कृषि द्वारा अन्न-रसों को प्राप्त करें और इस यात्रा की पूर्ति के लिए शरीर-रथ को ठीक रक्खें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, दैवीत्रिष्टुप्**॥

सत्येन उदरेण

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
सत्येनोदरेण। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४२॥

१. **ततः च**=और तब **येन च उदरेण**=जिस उदर से निश्चयपूर्वक **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**-इस ब्रह्मौदन का सेवन किया, यदि तू **अन्येन**=उससे भिन्न उदर से **एनं प्राशीः**=इसे खाता है, तो **एनम् आह**=वह तत्त्वद्रष्टा इससे कहता है कि **उदरदारः त्वा हनिष्यति इति**=(उदरस्य दरणम्) अतिसार-रोग तुझे नष्ट कर डालेगा। **तं वा अहम्**=मैं तो निश्चय से उस ब्रह्मौदन को **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल इस पृथिवी का, न सुदूर द्युलोक का और न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। मैंने तो **तेन सत्येन उदरेण**=सत्य के उदर से ही **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **तेन एनम् अजीगमम्**=उस सत्य के उदर से ही इसे प्राप्त किया है। इस वेदज्ञान से मैंने यह सीखा है कि भोजन में पूर्ण सत्य का पालन करना आवश्यक है। वही भोजन करना ठीक है जोकि उदर के द्वारा सुपच हो। यही भोजन हमें अतिसार आदि रोगों से बचाएगा। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेदज्ञान प्राप्त करें और '**अग्रे तौलस्य प्राशान**', इस वेदादेश के अनुसार भोजन में पूर्ण सत्य नियमों का पालन करें 'हिताशी, मिताशी व कालभोजी' बनें। ऐसा होने पर ही हम अतिसार आदि रोगों से पीड़ित न होंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, दैवीजगती, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीपङ्क्तिः**॥

समुद्रेण वस्तिना

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।

अप्सु मंरिष्यसीत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
समुद्रेण वस्तिना। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४३॥

१. '**वसति अस्मिन् अशितपीतान्नोदकम् इति वस्तिः मूत्राशयः। इतरावयवानामिव तस्यापि प्राशने साधकतमत्वमस्त्येव**—सा०' शरीर में भोजन का सब जल अन्ततः मूत्राशय में निवास करता है। यह शरीरस्थ समुद्र है। इसका ठीक रहना स्वास्थ्य के लिए नितान्त आवश्यक है। वास्तव में जैसे समुद्रजल शरीर के मलों को दूर करने का साधन है, इसी प्रकार यह वस्तिजल भी सभी मलों को दूर करके नीरोग बनानेवाला है। '**नरमूत्रम् रसायनम्**' ऐसा आयुर्वेद में कहा गया है। **ततः च** और तब **येन च वस्तिना** निश्चय से जिस वस्ति से **पूर्वे ऋषयः** पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**-इस ब्रह्मौदन को खाया है, **अन्येन**-उससे भिन्न अन्य वस्ति से **एनं प्राशीः**-यदि तू इसे खाता है तो वह ब्रह्मज्ञानी **एनम् आह**-इसे कहता है कि **अप्सु मरिष्यसि इति**-(आपः रेतो भूत्वा०) रेतःकणों के विषय में तू विनाश को प्राप्त होगा। इन रेतःकणों को ठीक से सुरक्षित न रख सकेगा। **अहम्** मैंने तो **तं वै**=उस ब्रह्मौदन को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्** न केवल नीचे इस पृथिवी के पदार्थों का, न सुदूर द्युलोक के पदार्थों का और न ही केवल सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जाना है। मैंने **एनम्** इस ब्रह्मौदन को **तेन समुद्रेण वस्तिना** उस शरीरस्थ समुद्रतुल्य वस्तिप्रदेश को ठीक रखने के हेतु से **प्राशिषम्** सेवन किया है, **तेन एनं अजीगमम्**-उसी हेतु से इसे प्राप्त किया है। इसके स्वास्थ्य से ही तो मैं शरीर में रेतःकणरूप जलों को सुरक्षित करके स्वस्थ बना हूँ। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेदज्ञान द्वारा शरीरस्थ समुद्ररूप वस्तिप्रदेश के महत्त्व को समझें। इसके स्वास्थ्य से शरीर में रेतःकणरूप जलों का रक्षण करते हुए जीवन का धारण करें। '**मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्**'।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीजगती**॥

मित्रावरुणयोः ऊरुभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
ऊरू ते मरिष्यत इत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४४॥

१. ('अर्पते अनेन' 'अर्तेरूरच्च' सूत्र से कु प्रत्यय व ऋ को ऊर आदेश) 'ऊरु' गति के साधनभूत होते हैं। वेद के अनुसार हमारी सब गति 'मित्र व वरुण' की होनी चाहिए, अर्थात् हमारे सब कार्य स्नेह व निर्द्वेषता के साथ होने चाहिएँ। **ततः च**-और तब **याभ्यां च ऊरुभ्याम्**-निश्चय से जिन ऊरु-प्रदेशों से—जङ्घाओं (Thighs) से **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**-इस ब्रह्मौदन को खाया, **अन्याभ्याम्**-उनसे भिन्न ऊरुओं से **एनं प्राशीः**-इस ओदन को तूने खाया तो **ते ऊरू मरिष्यतः इति**-तेरे ये ऊरूप्रदेश विकृत हो जाएँगे—मर जाएँगे।

ऐसा वह ब्रह्मज्ञानी **एनं आह**-इसे कहता है **अहम्**=मैंने तो **वै**-निश्चय से **तम्**=उस ब्रह्मौदन को **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल नीचे पृथिवी के पदार्थों का, न ही सुदूर द्युलोक के पदार्थों का और न ही केवल सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला जाना है। मैंने तो **एनम्**-इस ब्रह्मौदन को **ताभ्यां मित्रावरुणयोः ऊरुभ्याम्**=उन मित्र और वरुण के ऊरु-प्रदेशों के हेतु से **प्राशिषम्**=खाया है, **ताभ्याम्**=उनके हेतु से ही **एनं अजीगमम्**-इसे प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः०**(शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेदज्ञान द्वारा प्रेरणा लेकर सदा स्नेह व निर्द्वेषता से गतिवाले बनें और इसप्रकार अपने ऊरु-प्रदेशों को पूर्ण स्वस्थ बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीपङ्क्तिः, दैवीत्रिष्टुप्**॥

त्वष्टुः अष्ठीवद्भ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४५॥

१. शरीर में घुटनों की अस्थियाँ अपना विशेष ही महत्त्व रखती हैं (अतिशयितं अस्थि यस्मिन् इति) इन अस्थियों में प्रभु की महिमा दृष्टिगोचर होती है। **ततः च**=और तब **याभ्यां च अष्ठीवद्भ्याम्**-जिन घुटनों से **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **अन्याभ्याम्**-उनसे भिन्न घुटनों के दृष्टिकोण से **एतं प्राशीः**=यदि तू इस ओदन को खाता है, तो वह तत्त्वद्रष्टा **एनं आह**=इसे कहता है कि **स्रामः भविष्यसि इति**-तू पके हुए घुटनोवाला (स्रै पाके, शुष्कजंघः—सा०)—शुष्क जंघाओंवाला हो जाएगा। **अहम्**-मैं तो **तं वै**-उस ब्रह्मौदन को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न नीचे पृथिवी के पदार्थों का, न ही दूरस्थ द्युलोक के पदार्थों का और न सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला समझता हूँ। मैंने तो **ताभ्याम्**=उन **त्वष्टुः अष्ठीवद्भ्याम्**=निर्माता की महिमा के प्रतिपादक घुटनों से **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **ताभ्यां एनं अजीगमम्**=उन्हीं से इसे प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—तत्त्वद्रष्टा ऋषियों को इन अतिशयित प्रशस्त अस्थिवाले घुटनों में भी उस निर्माता (त्वष्टा) की महिमा का दर्शन होता है। हम भी इनके द्वारा ब्रह्मौदन को खानेवाले बनें, अर्थात् इनका विचार करते हुए ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करें

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, याजुषीगायत्री**॥

अश्विनोः पादाभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
अश्विनोः पादाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४६॥

१. 'पाद' (पद गतौ) गति के लिए दिये गये हैं। यदि इनके द्वारा मनुष्य गतिमय जीवन रखता है तो उसकी प्राणापान शक्ति ठीक बनी रहती है और मानव जीवन नीरोग रहता है, अतः तत्त्वद्रष्टा पुरुष पाँवों से गति के महत्त्व को समझते हुए गतिशील जीवनवाले होते हैं। **ततः च** और तब **याभ्यां च पादाभ्याम्**-जिन गतिशील पाँवों से **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है **अन्याभ्याम्**=उनसे भिन्न औरों पर प्रहार करनेवाले पाँवों से **एनं प्राशीः**-इस ब्रह्मौदन को खाया है, तो **एनं आह**-वह तत्त्वद्रष्टा इसे कहता है कि **बहुचारी भविष्यसि इति** तू व्यर्थ में भटकनेवाला बनेगा। **अहम्**-मैं तो **तं वै**=उस ब्रह्मज्ञान को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**=न केवल यहाँ नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ, न ही सुदूर द्युलोक के पदार्थों का और न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। मैंने **एनम्**-इस ब्रह्मौदन को **ताभ्याम्**=उन **अश्विनोः**-प्राणापान के **पादाभ्याम्**-पाँवों से **प्राशिषम्**=खाया है, **ताभ्याम्**-उनसे ही **एनं अजीगमम्**=इसे प्राप्त किया है। २. **एषं वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—तत्त्वद्रष्टा पुरुष प्राणापान की शक्ति के वर्धन के लिए पाँवों से उचित गतिवाले होते हैं। परिणामतः ये व्यर्थ में भटकनेवाले नहीं होते।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, दैवीजगती, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, आसुरीबृहती**॥

सवितुः प्रपदाभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
सवितुः प्रपदाभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४७॥

१. हमारे प्रपद, अर्थात् पादाग्र (पञ्जे) सदा सविता के हों, अर्थात् हम सदा निर्माण के कार्यों के लिए ही गतिवाले हों। **ततः च**-और तब **याभ्यां च प्रपदाभ्याम्**-जिन पञ्जों से **पूर्वे ऋषयः**-पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एनं प्राश्नन्**-इस ब्रह्मौदन को खाया है, **अन्याभ्याम्**-उनसे भिन्न पञ्जों से **एनं प्राशीः**-यदि तू इस ब्रह्मौदन को खाता है तो **एनं आह**-वह तत्त्वद्रष्टा इसे कहता है कि **सर्पः त्वा हनिष्यति इति**=कुटिल गति (Serpentive motion) तुझे नष्ट कर डालेगी। **अहम्**-मैं तो **तं वै**=उस ब्रह्मौदन को निश्चय से **न अर्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्**-न केवल यहाँ—नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, न सुदूर द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ। मैंने **एनम्** इस ब्रह्मौदन को **ताभ्याम्** उन **सवितुः प्रपदाभ्याम्**=निर्माता के पञ्जों से ही **प्राशिषम्**-खाया है, **ताभ्यां एनं अजीगमम्**-उन्हीं के हेतु से इसे प्राप्त किया है। **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—इन पञ्जों (प्रपदों) में भी प्रभु की रचना की महिमा को देखता हुआ मैं सदा निर्माणात्मक कार्यों के लिए ही गतिशील होता हूँ। कुटिलगति से मैं सदा दूर रहता हूँ।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, याजुषीगायत्री** ॥

ऋतस्य हस्ताभ्याम्

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्यैनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
ऋतस्य हस्ताभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४८ ॥

१. प्रभु ने हाथ दिये हैं। इनसे हमें सदा उत्तम कर्मों (ऋत=right) को ही करना है। **ततः च**=और तब **याभ्यां च हस्ताभ्याम्**=जिन हाथों से **एतम्**=इस ब्रह्मौदन को **पूर्वे ऋषयः**=पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **प्राश्नन्**=खाया है, **अन्याभ्याम्**-उनसे भिन्न हाथों से **एनं प्राशीः**=इसे खाता है, तो **एनम् आह**=इसे तत्त्वद्रष्टा कहता है कि **ब्राह्मणं हनिष्यसि इति**-ब्रह्मज्ञान को तू नष्ट करनेवाला होगा। ऋत के पालन से ब्रह्मज्ञान की वृद्धि होती है और ऋत का विनाश ब्रह्मज्ञान के विनाश का हेतु बनता है। **अहम्**=मैं **वै तम्**=निश्चय से उस ब्रह्मौदन को **न अर्वाञ्चम्**-न केवल नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला मानता हूँ **न पराञ्चम्**=न सुदूर द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और न ही **न प्रत्यञ्चम्**=सम्मुखस्थ अन्तरिक्षलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला। मैं तो **ताभ्याम् ऋतस्य हस्ताभ्याम्**=उन ऋत के हाथों से **एनं प्राशिषम्**=इस ब्रह्मौदन को खाता हूँ, **ताभ्यां एनम् अजीगमम्**=ऋत के हाथों से ही इसे प्राप्त करता हूँ। २. **एषः वा ओदनः०** (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेद से प्रेरणा प्राप्त करके सदा हाथों से ऋत (ठीक कर्मों) को ही करनेवाले बनें। ऋत का पालन हमारे ब्रह्मज्ञान की वृद्धि का कारण बनेगा।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्, एकपदाऽऽसुरीगायत्री, एकपदाऽऽसुर्यनुष्टुप्, साम्न्यनुष्टुप्, आर्च्यनुष्टुप्, दैवीत्रिष्टुप्, एकपदा भूरिक्साम्नीबृहती** ॥

सत्ये प्रतिष्ठाय

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्यैनमाह।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्।
सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४९ ॥

१. इस पृथिवी पर गति करते हुए हम इस पृथिवी को प्रतिष्ठा (आधार) समझते हैं, परन्तु वास्तव में प्रतिष्ठा तो 'सत्य' है—सत्यस्वरूप प्रभु ही अन्तिम आधार है। **ततः च**=और तब **यया च प्रतिष्ठया**=जिस सत्यरूप आधार के विचार से **पूर्वे ऋषयः**=पालक तत्त्वद्रष्टाओं ने **एतं प्राश्नन्**=इस ब्रह्मौदन को खाया है, **अन्यया**=उससे भिन्न अन्न लौकिक आधारों के द्वारा **प्राशीः**=तू ब्रह्मौदन को खाता है, तो **एनम् आह**-तत्त्वद्रष्टा इसे कहता है कि **अप्रतिष्ठानः**=आधारशून्य हुआ-हुआ **अनायतनः**=बिना घर-बारवाला **मरिष्यसि इति**-तू मर जाएगा। **अहम्**=मैं तो **तं वै**=उस ब्रह्मौदन को निश्चय से **न अर्वाञ्चम्**=न केवल नीचे पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला, **न**

पराञ्चम्-न सुदूर द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान देनेवाला और **न प्रत्यञ्चम्**-न ही सम्मुखस्थ अन्तरिक्ष लोक के पदार्थों का ही ज्ञान देनेवाला जानता हूँ। **सत्ये प्रतिष्ठाय** सत्य में ही प्रतिष्ठित होकर **तया**-उस सत्य में प्रतिष्ठा के द्वारा ही **एनं प्राशिषम्**-इस ब्रह्मौदन को खाया है, **तया एनम् अजीगमम्** उस सत्यप्रतिष्ठा के द्वारा ही इसे प्राप्त किया है। २. **एषः वा ओदनः**० (शेष पूर्ववत्)

भावार्थ—हम वेद से प्रेरणा प्राप्त करके सत्य को ही अपना आधार समझें। अन्य आधार धोखा दे जाते हैं। सत्यस्वरूप प्रभु ही हमारे सच्चे आधार हैं।

३. [तृतीयं सूक्तम्, तृतीयः पर्यायः]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**५० आसुर्यनुष्टुप्, ५१ आर्च्युष्णिक्**॥

ब्रध्नस्य विष्टपम्

एतद्वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः॥ ५०॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद॥ ५१॥

१. **यत् एतत् ओदनः**-यह जो ब्रह्मौदन—सुखों से हमें सिक्त करनेवाला वेदज्ञान है, वह **वै**-निश्चय से **ब्रध्नस्य**-इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने में बाँधनेवाले महान् प्रभु का (ब्रह्मा का) **विष्टपम्** लोक है, अर्थात् यह वेदज्ञान हमें प्रभु की ओर ले चलनेवाला है। २. **यः एवं वेद**=जो इसप्रकार इस ओदन के आधार को समझ लेता है, वह **ब्रध्नलोकः भवति**-ब्रह्मलोकवाला होता है, अर्थात् **ब्रध्नस्य विष्टपि**-उस सब ब्रह्माण्ड को अपने में बाँधनेवाले महान् प्रभु के लोक में **श्रयते**=आश्रय करता है।

भावार्थ—यह ब्रह्मौदन (वेदज्ञान) ब्रह्म का लोक है। वेद को समझनेवाला पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**५२ त्रिपदाभुरिक्साम्नीत्रिष्टुप्; ५३ आसुरीबृहती**॥

ओदन से तेतीस लोक

एतस्माद्वा ओदनात्त्रयस्त्रिंशतं लोकान्निरमिमीत प्रजापतिः॥ ५२॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत॥ ५३॥

१. **प्रजापतिः**-परमात्मा ने **एतस्मात् वै ओदनात्** निश्चय से इस ओदन (वेदज्ञान) से ही **त्रयस्त्रिंशतम्**-तेतीस **लोकान्**=लोकों को **निरमिमीत**-बनाया। '**वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**' यह मनुवाक्य इसी भाव को व्यक्त कर रहा है। शब्द से सृष्टि की उत्पत्ति का सिद्धान्त सब प्राचीन साहित्यों में उपलभ्य है। २. **तेषाम्**=उन लोकों के **प्रज्ञानाय**=प्रकृष्ट ज्ञान के लिए प्रभु ने **यज्ञम् असृजत**=यज्ञ की उत्पत्ति की। '**यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु**'-देवपूजा (बड़ों का आदर), परस्पर प्रेम (प्रणीतिरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सह) तथा आचार्य के प्रति अपना अर्पण कर देना, ये तीन उपाय प्रभु ने **असृजत**-रचे। 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' से ही ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है।

भावार्थ—वेद-शब्दों से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई। इन्हें समझने के लिए आवश्यक है कि हम बड़ों का आदर करें, परस्पर प्रीतिपूर्वक वर्तें तथा आचार्यों के प्रति अपने को दे डालें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**५४ द्विपदा भुरिक्साम्नीबृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्याबृहती**॥

प्राणरोध—सर्वज्यानि—शीघ्रमृत्यु

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि॥ ५४॥

न च॑ प्रा॒णं रु॑णद्धि सर्वज्या॒निं जीयते॥ ५५॥

न च॑ सर्वज्या॒निं जी॒यते॑ पु॒रैनं॑ ज॒रस॑ः प्रा॒णो ज॑हाति॥ ५६॥

१. **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार **विदुषः**=सृष्टितत्त्व के ज्ञाता का—ओदन के महत्त्व को समझनेवाले का **उपद्रष्टा**-आलोचक (निन्दक) **भवति**=होता है **सः**=वह **प्राणं रुणद्धि**=प्राणशक्ति का निरोध कर बैठता है—उसकी प्राणशक्ति क्षीण हो जाती है। २. **न च प्राणं रुणद्धि**=और केवल प्राणशक्ति का निरोध ही नहीं कर बैठता, वह **सर्वज्यानिं जीयते**-सब प्रकार की हानि का भागी होता है—वह सर्वस्व खो बैठता है। **न च सर्वज्यानिं जीयते**=न केवल सर्वस्व खो बैठता है, अपितु **प्राणः**=प्राण—जीवन **एनम्**=इसे **जरसः पुरा जहाति**-बुढ़ापे से पहले ही छोड़ जाता है, अर्थात् युवावस्था में ही समाप्त हो जाता है।

भावार्थ—जो ज्ञान के महत्त्व को न समझता हुआ ज्ञान-प्रवण नहीं होता, बल्कि ज्ञानियों की आलोचना ही करता है, वह प्राणशक्ति के ह्रास—सर्वनाश व शीघ्रमृत्यु का भागी बनता है।

गत सूक्तों में वर्णित ब्रह्मज्ञान में अपने को परिपक्व करनेवाला 'भार्गव' बनता है। यह उस 'स उ प्राणस्य प्राणः' प्राणों के भी प्राण प्रभु से अपना मेल बनाकर 'वैदर्भि' (दृभ् to tie, fasten, string together) कहलाता है। यह 'भार्गव वैदर्भि' 'प्राण' नाम से प्रभु का स्तवन करता है कि—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**शङ्कुमत्यनुष्टुप्** ॥

प्राणात्मा प्रभु को प्रणाम

प्रा॒णाय॒ नमो॒ यस्य॒ सर्व॑मि॒दं वशे॑। यो भू॒तः सर्व॑स्येश्व॒रो यस्मि॒न्त्सर्वं॒ प्रति॑ष्ठितम्॥ १॥

१. उस **प्राणाय**=('सर्वप्राणिशरीरं व्याप्य चेष्टते—हिरण्यगर्भः'—सा०) सबके प्राणभूत प्रभु के लिए **नमः**=नमस्कार हो, **यस्य**=जिस प्राणप्रभु के **इदं सर्वं वशे**=यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् वश में है, **यः**=जो प्राणों का प्राण प्रभु **भूतः**=(सर्वदा लब्धसत्ताकः, भूतकालावच्छिन्नः, न तु भविष्यन्) सदा से हैं—'वे कभी होंगे' ऐसा उनके लिए नहीं कहा जाता। **सर्वस्य ईश्वरः**=सब प्राणिजात के ईश हैं—कर्मानुसार विविध योनियों में प्राप्त करानेवाले हैं। **यस्मिन्**-जिस प्राणात्मा प्रभु में **सर्वं प्रतिष्ठितम्**-सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है—'जो सर्वाधार हैं' उन प्रभु के लिए हम प्रणाम करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणात्मा प्रभु को प्रणाम करते हैं। उन्हीं के वश में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है। वे प्रभु सदा से हैं, सबके ईश्वर हैं, सबकी प्रतिष्ठा (आधार) हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मेघात्मा प्रभु

नम॑स्ते प्राण॒ क्रन्दा॑य॒ नम॑स्ते स्तनयि॒त्नवे॑। नम॑स्ते प्राण वि॒द्युते॒ नम॑स्ते प्राण॒ वर्ष॑ते॥ २॥

१. मेघरूप में वे प्राणप्रभु ही वृष्टि करते हैं। हे **प्राण**=सबको प्राणित करनेवाले मेघरूप प्रभो! **क्रन्दाय ते नमः**=बादलों की घटा में प्रवेश करके ध्वनि करते हुए आपके लिए नमस्कार हो। **स्तनयित्नवे ते नमः**-उसी प्रकार स्तनित व गर्जित करते हुए आपके लिए नमस्कार हो। २. हे **प्राण**=प्राणात्मा प्रभो! **विद्युते ते नमः**=विद्युद्रूप से विद्योतमान आपके लिए प्रणाम हो और तब हे **प्राण**=सबके प्राणभूत प्रभो! **वर्षते ते नमः**-वृष्टि करते हुए आपके लिए प्रणाम हो।

भावार्थ—प्रभु ही मेघों में प्रविष्ट होकर ध्वनि व गर्जन कर रहे हैं। उन्हीं की शक्ति व व्यवस्था से ही सब विद्योतन व वर्षण होता है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सूर्यात्मा प्रभु

यत्प्राण स्तनयित्नुनाऽभिक्रन्दत्योषधीः। प्र वीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते॥ ३॥

१. **यत्**-(यदा) जब **प्राणः**=जगत् प्राणभूत सूर्यात्मक देव **स्तनयित्नुना**-मेघध्वनि से **ओषधीः अभिक्रन्दति**-व्रीहि-यवादि ग्राम्य व आरण्य लताओं के प्रति शब्द करता है, तब वे ओषधियाँ **प्रवीयन्ते**-प्राणाभिक्रन्दनमात्र से ही गर्भ को ग्रहण करती हैं—प्रजननाभिमुख होती हैं। वर्षाऋतु सब ओषधियों के गर्भग्रहण का काल है ही, तब ये ओषधियाँ **गर्भान् दधते**-गर्भों को धारण करती हैं। **अथो**-तदनन्तर **बह्वीः**-बहुत प्रकारोंवाली **विजायन्ते**-उत्पन्न होती हैं।

भावार्थ—सूर्य व मेघ आदि में प्राणरूप से स्थित प्रभु मानो ओषधियों का लक्ष्य करके मेघध्वनि से शब्द करते हैं। तब प्रजननाभिमुख हुई-हुई ये ओषधियाँ गर्भग्रहण करती हैं और विविधरूपों में प्रादुर्भूत हो जाती हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वृष्टि व प्राणिमात्र की प्रसन्नता

यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत्किं च भूम्यामधि॥ ४॥

१. **यत्**-जब **प्राणः**-प्राणदाता—प्राणशक्ति का पुञ्ज प्रभु **ऋतौ आगते**-ऋतु के—वर्षाकाल के आने पर **ओषधीः अभिक्रन्दति**-ओषधियों के प्रति मेघध्वनि से आक्रन्दन करता है **तदा**-तब **भूम्याम् अधि**-इस पृथिवी पर **यत् किञ्च**-जो कोई प्राणसमूह है, **सर्वं प्रमोदते**-वह सब प्रसन्न हो उठता है।

भावार्थ—ग्रीष्म से सन्तप्त प्राणिसमूह मेघध्वनि को सुनते ही प्रफुल्लित हो उठता है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वर्षम्—महः

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत्प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥ ५॥

१. **यदा**=जब **प्राणः**=यह प्राणदाता मेघात्मा प्रभु **महीं पृथिवीम्**-इस महती विस्तीर्ण भूमि को **वर्षेण अभ्यवर्षीद्**=वृष्टि द्वारा अभितः सिक्त करता है, **तत्**=तब **पशवः प्रमोदन्ते**-सब पशु प्रसन्न होते हैं कि **नः महः भविष्यति**-हमारा तो अब उत्सव होगा। वृष्टि से पृथिवी पर सर्वत्र खूब सस्य उत्पन्न होंगे और उनके खाने से हमारा समुचित पोषण होगा।

भावार्थ—वृष्टि से अन्न व अन्न से प्राणियों का जीवन होता है। इसप्रकार मेघध्वनि होने पर उज्ज्वल उत्सव की कल्पना करके सब पशु प्रसन्न होते हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ओषधियों का कृतज्ञता प्रकाशन

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः॥ ६॥

१. प्रभु ने ओषधियों के विकास के लिए वृष्टि की। ये **अभिवृष्टाः ओषधयः**-वृष्टिजल से सिक्त हुई-हुई ओषधियाँ **प्राणेन समवादिरन्**=प्राणात्मा प्रभु से संवाद करती हैं कि हे प्रभो!

वै-निश्चय से तूने **नः आयुः**=हमारी आयु को **प्रातीतरः**=बढ़ाया है और **न सर्वाः**=हम सबको **सुरभीः अकः**=सुगन्धवाला किया है।

भावार्थ—वे प्राणात्मा प्रभु ही मेघरूप से वृष्टि करके सब ओषधिओं को उत्पन्न करते हैं और इन्हें सुगन्ध से युक्त करते हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सब क्रियाओं का निर्वर्तक 'प्राण'

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

१. प्रभु-प्रदत्त प्राणशक्ति से ही सब कार्यों की सिद्धि होती है। आगमनादि सब क्रियाएँ प्राण-व्यापार से ही निर्वर्त्य हैं, अतः कहते हैं कि हे प्राण! **आयते ते नमः अस्तु**=आगमन क्रिया करते हुए तेरे लिए नमस्कार हो। **परायते नमः अस्तु**=पराङ्मुख जाते हुए तेरे लिए नमस्कार हो। हे प्राण! **तिष्ठते ते नमः**-जहाँ कहीं भी स्थित हुए-हुए तेरे लिए नमस्कार हो, **उत**=और **आसीनाय ते नमः**=उपविष्ट हुए-हुए तेरे लिए नमस्कार हो।

भावार्थ—प्रभु-प्रदत्त प्राणों से होती हुई विविध क्रियाओं को देखकर हम प्रभु के प्रति प्रणत हों।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

पराचीनाय—प्रतीचीनाय

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥

१. हे **प्राण**=प्राण! **प्राणते ते नमः**-प्राणन-व्यापार करते हुए तेरे लिए नमस्कार हो, **अपानते नमः अस्तु**=अपानन व्यापार करते हुए तेरे लिए नमस्कार हो। **पराचीनाय**=(पराञ्चनाय) परागमन स्वभाववाले देह से बाहर अवस्थित **ते नमः**=तेरे लिए नमस्कार हो। **प्रतीचीनाय**=(प्रतिमुखं अञ्चते) प्रतिमुख आते हुए देहमध्य में वर्त्तमान **ते**=तेरे लिए **नमः**=नमस्कार हो। संक्षेप में, **सर्वस्मै ते**-सब व्यापारों को करनेवाले सर्वप्राणिशरीरान्तर्वर्ती **ते**-तेरे लिए **इदं नमः**=यह नमस्कार हो।

भावार्थ—प्राणापान आदि क्रियाओं को शरीर में प्रवृत्त करानेवाले उस प्राणों के प्राण प्रभु के लिए हमारा नमस्कार हो।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

न केवल प्रिया, अपितु प्रेयसी 'तनूः'

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

१. प्राण का व्यापार ठीक से होने पर शरीर बड़ा सुन्दर बनता है—सुन्दर ही क्या इसकी स्थिति अत्यन्त सुन्दर होती है, अतः कहते हैं कि हे **प्राण**=प्राण! **या**=जो **ते**-तेरा **प्रिया तनूः**=स्वस्थ अतएव प्रीतिकर शरीर है, **या उ**=और जो निश्चय से, हे **प्राण**=प्राण! **ते प्रेयसी**=(तनूः) तेरा अतिशयित प्रीति करनेवाला शरीर है **अथो**=और **यत्**=जो **तव भेषजम्**=तेरा औषधगुण है, **तस्य नः धेहि**=उसे हमारे लिए धारण कर, **जीवसे**=जिससे हम उत्तम जीवनवाले बनें।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमें प्राणसाधना द्वारा वह प्राणशक्ति प्राप्त हो, जिससे कि हमारी तनू (शरीर) नीरोग व प्रिय (सुन्दर) बने।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सर्वस्य ईश्वरः प्राणः

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न॥ १०॥

१. **प्राणः**=प्राण **प्रजाः**-देव, तिर्यङ्, मनुष्य आदि सब प्रजाओं को **अनुवस्ते**-अनुक्रमेण आच्छादित किये हुए हैं। उनके शरीरों को नाड़ियों के द्वारा व्याप्त करके रह रहा है। यह प्राण प्रजाओं को इसप्रकार आच्छादित किये हुए हैं, **इव**-जैसेकि पिता **प्रियं पुत्रम्**-अपने प्रिय पुत्र को अपने वस्त्र से आच्छादित करता है। २. **यत् च**-और जो जङ्गमात्मक वस्तु **प्राणति**=प्राणन व्यापार करती है **यत् च न**=और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार नहीं करती, **प्राणः** प्राण **ह** निश्चय से **सर्वस्य**-उस सबका **ईश्वरः**-ईश्वर है। स्थावरों में भी आत्मा से अविनाभूत यह प्राण निरुद्धगतिवाला होता हुआ अन्दर है ही।

भावार्थ—प्राण सब प्रजाओं को अपने से आच्छादित करके सब रोगों के आक्रमणों से बचाता है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्राणसाधना से उत्तम लोक

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥ ११॥

१. **प्राणः मृत्युः** यह 'प्राण' देव ही अपने निर्गमन के द्वारा सब प्राणियों का मारणकर्ता होता है तथा **प्राणः तक्मा**-प्राण ही, पूर्ण स्वस्थगतिवाला न होता हुआ, ज्वरादि रोगों का कारण बनता है। **देवाः** शरीरस्थ सब इन्द्रियाँ **प्राणं उपासते**-इस प्राण की ही उपासना करती हैं—सब इन्द्रियों में वस्तुतः प्राणशक्ति ही कार्य करती है। '**प्राणः वाव इन्द्रियाणि**'। २. **प्राणः ह**-प्राण ही निश्चय से **सत्यवादिनम्**-सत्यवादी पुरुष को **उत्तमे लोके आदधत्**-उत्तम लोक में धारण करता है। प्राणसाधना से जैसे शरीर से रोग नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस साधना से मन से असत्य दूर भाग जाता है, इसप्रकार इस साधक की उत्तम गति होती है।

भावार्थ—प्राण का बहिर्गमन ही मृत्यु है, इसकी अस्वस्थ गति ही रोग है। सब इन्द्रियों में प्राणशक्ति ही कार्य करती है। प्राणसाधना से मानस दोष भी दूर होकर उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'प्राणः' विराट्

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते॥
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्॥ १२॥

१. **प्राणः**-सारे ब्रह्माण्ड को प्राणित करनेवाला प्रभु ही **विराट्**-इस स्थूल प्रपञ्च का अधिष्ठाता (शासक) ईश्वर है। वह **प्राणः**-प्राणशक्ति देनेवाला प्रभु ही **देष्ट्री**-अपने अपने व्यापारों में सबको प्रेरित करनेवाला है **प्राणम्**-इस 'विराट् देष्ट्री' प्राण को ही **सर्वे उपासते**-सब लोग स्वाभिलषित की सिद्धि के लिए सेवित करते हैं। २. **प्राणः ह**-सबको प्राणित करनेवाले प्रभु ही **सूर्यः चन्द्रमाः**-सबके प्रेरक 'आदित्य' व अमृतमय 'सोम' हैं—वे प्रभु 'अग्नीषोमात्मक' हैं। **प्राणम्**-इस प्राण को ही **प्रजापतिम् आहुः**-प्रजाओं का स्रष्टा देव कहते हैं।

भावार्थ—प्राणों के भी प्राण प्रभु इस ब्रह्माण्डरूप शरीर के अधिष्ठाता 'विराट्' हैं। वे ही सबके कर्त्तव्यों का निर्देश करनेवाले हैं। सब लोग इस प्राण की ही उपासना करते हैं। वह प्राण ही सूर्य चन्द्र व प्रजापति हैं। अग्नीषोमात्मक होता हुआ यह प्राण ही सब प्रजाओं का पालक है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

व्रीहि+यव=अपान+प्राण

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान्प्राण उच्यते।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते॥ १३॥

१. इस संसार में **व्रीहि-यवौ**=चावल और जौ **प्राणापानौ**=प्राण और अपान हैं। **यवे**=जौ में **ह**=निश्चय से **प्राणः आहितः**=प्राणशक्ति स्थापित हुई है और **व्रीहि**=चावल **अपानः उच्यते**=अपान कहा जाता है—सब दोषों का अपनयन करनेवाला है। २. वस्तुतः **प्राणः**=प्राण ही **अनड्वान्** (अनसः जीवनस्य वाहकः)=जीवन-शकट का वहन करनेवाला **उच्यते**-कहा जाता है। 'अपान' आदि सब मुख्यप्राण के ही अवान्तर रूप हैं।

भावार्थ—प्राणात्मा प्रभु ने जीवन-शकट के वहन के लिए शरीर में प्राणापान की स्थापना की है। इनके पोषण के लिए प्रभु ने 'यव व व्रीहि' नामक धान्यों को प्राप्त कराया है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥

सर्वोत्पादक 'प्राण'

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥ १४॥

१. **पुरुषः**-अन्न-रस परिणामरूप शरीर को धारण करनेवाला पुरुष **गर्भे अन्तरा**=स्त्री के गर्भाशय के मध्य में **अपानति प्राणति**=प्राण का प्रवेश होने पर अपान व प्राणन-व्यापारों को करता है। हे प्राण! तू शुक्रशोणितावस्था में ही पुरुषशरीर में प्रवेश करके उसके परिणाम के लिए प्राणापान वृत्तियों को पैदा करता है। २. हे **प्राण**=प्राणात्मन् प्रभो! **यदा**=जब आप **जिन्वसि**=गर्भीभूत पुरुष को मातृयुक्त आहार से परिणत अन्न-रस से प्रीणित(पुष्ट) करते हो, **अथ**=तब ही **सः पुनः जायते**=वह पुरुष स्वार्जित परिपक्व पुण्य-पाप के फल के उपभोग के लिए पुनः भूमि पर उत्पन्न होता है।

भावार्थ—मातृगर्भ में प्राण का प्रवेश होने पर ही प्राणापान का व्यापार चलता है। प्राण ही गर्भीभूत पुरुष को पुष्ट करके पृथिवी पर जन्म देता है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्** ॥

प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ १५॥

१. **प्राणम्**=उस जीवनदाता प्रभु को ही **मातरिश्वानम् आहुः**-मातरिश्वा 'मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति वर्तते'—सम्पूर्ण आकाश में व्याप्तिवाला कहते हैं। **प्राणः ह**=वह प्राण ही **वातः उच्यते**-सर्वजगदाधारभूत सूत्रात्मा वायु कहलाता है। २. **प्राणे**=इस सर्वव्यापक सर्वजगदाधारभूत प्राणात्मा प्रभु में ही **ह**=निश्चय से **भूतं भव्यं च**=भूतकालावच्छिन्न उत्पन्न जगत् तथा भविष्यत् कालावच्छिन्न उत्पत्स्यमान जगत् आश्रित है। बहुत क्या कहना, **सर्वं**=यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड **प्राणे**

प्रतिष्ठितम्-उस प्राणात्मा प्रभु में प्रतिष्ठित है।

भावार्थ—प्राणात्मा प्रभु ही सर्वव्यापक व सर्वाधार हैं। उन्हीं में भूत व भव्य सब-कुछ प्रतिष्ठित है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चार प्रकार की ओषधियाँ

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥ १६॥

१. जो ओषधियाँ मन की स्थिरता में सहायक होती हैं वे (अ थर्व) 'आथर्वणी' कहाती हैं। अंग-प्रत्यंग में रस का सञ्चार करनेवाली ओषधियाँ 'आंगिरसी' हैं। देवों, अर्थात् सब इन्द्रियों को निर्दोष व सशक्त बनानेवाली ओषधियाँ 'दैवी' हैं। विचारपूर्वक कर्म करनेवाले मनुष्य 'मत्वा कर्माणि सीव्यति' को जन्म देनेवाली 'मनुष्यजा' कहलाती हैं। ये '**आथर्वणीः, आंगिरसीः, दैवीः उत मनुष्यजाः**' आथर्वणी, आंगीरसी, दैवी और मनुष्यजा **ओषधयः**-ओषधियाँ **प्रजायन्ते** तभी पैदा होती हैं, **यदा**-जब हे **प्राण**-प्राणात्मन् प्रभो! **त्वं जिन्वसि**-आप प्रीणित करते हैं। हे प्राण! आप ही वृष्टिप्रदान से इन ओषधियों का पोषण करते हैं।

भावार्थ—प्रभुकृपा से वृष्टि होकर उन विविध ओषधियों की उत्पत्ति होती है, जोकि 'मानस स्थिरता में सहायक होती हैं, अंग-प्रत्यगों में रस का सञ्चार करती हैं, इन्द्रियों को निर्दोष व सशक्त बनाती हैं तथा हमें विचारपूर्वक कर्म करनेवाला करती हैं'।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ओषधयः+वीरुधः

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥ १७॥

१. **यदा**-जब **प्राणः**-वे प्राणात्मा प्रभु मेघरूप में इस **महीं पृथिवीम्**-महनीय पृथिवी को **वर्षेण अभ्यवर्षीत्**-वृष्टि से सिक्त करते हैं, तब **ओषधयः**-व्रीहि यव आदि ओषधियाँ, **अथो**-और अब **याः काः च** जो कोई नाना रूपवाली **वीरुधः**-विरोहणशील लताएँ हैं, वे सब भी **प्रजायन्ते**-प्रादुर्भूत हो उठती हैं—भूगर्भ से ऊपर उठती दिखने लगती हैं।

भावार्थ—प्राण प्रदाता प्रभु मेघात्मा होकर इस महनीय पृथिवी को वृष्टि से सींचते हैं, तब विविध ओषधियों व लताओं का पृथिवीगर्भ से प्रादुर्भाव होता है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभुस्मरण व अमृतत्व

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे॥ १८॥

१. हे **प्राण**-प्राणशक्ति के पुञ्ज प्रभो! **ते**-आपके **इदम्** इस ऊपर वर्णित माहात्म्य को **यः वेद** जो जानता है, **यस्मिन् च** और जिस विद्वान् में **प्रतिष्ठितः असि**-आप भाव्यमान (सदा स्मरणीय) होते हो, **तस्मै**-उस ज्ञानी पुरुष के लिए **अमुष्मिन् उत्तमे लोके**-उस स्वर्गतुल्य उत्तम लोक में **सर्वे** सब देव—सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियाँ—**बलिम्**-अमृतमय भाग को **हरान्**-प्राप्त कराते हैं, एवं यह प्रकाशमय व स्वस्थ जीवनवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु-महिमा को जानने व स्मरण करनेवाला पुरुष स्वर्गतुल्य उत्तम लोक में

निवास करता है। सूर्य-चन्द्र आदि सब देवों की उसके लिए अनुकूलता होकर उसे अमृतत्व (नीरोगता) प्राप्त होती है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'प्रभुवाणी' श्रवण

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृणवत्सुश्रवः॥ १९॥

१. हे **प्राणः**=प्राणात्मन् प्रभो! **यथा**-जैसे **इमाः सर्वाः प्रजाः**=ये सब प्रजाएँ **तुभ्यं बलिहृतः**=आपके लिए उपहार लानेवाली होती हैं—ब्रह्मयज्ञ के रूप में संसार में ज्ञानवृद्धि के लिए अपनी आय का कुछ अंश देती हैं, **एव**=इसी प्रकार **तस्मै बलिं हरान्**=उसके लिए भी बलि लाती हैं, **यः**=जो हे **सुश्रवः**=हमारी प्रार्थनाओं को सुननेवाले प्रभो! **त्वा शृणवत्**=आपसे उच्चरित इन वेदवचनों को सुनता है।

भावार्थ—हम प्रभु वाणियों को सुनेंगे तो प्रभु के प्रिय बनकर सब प्रजाओं के भी प्रिय होंगे।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भात्रिष्टुप्** ॥

गर्भरूप से रहनेवाला 'प्राण' प्रभु

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत्पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥ २०॥

१. **देवतासु**=सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, अग्नि आदि सब देवों में **गर्भः**-गर्भरूप होता हुआ **अन्तःचरति**=अन्दर विचरण करता है। **आभूतः**=समन्तात् व्याप्त हुआ-हुआ **भूतः**=(जातः) नित्य होता हुआ **सः उ**=वह प्राण ही **पुनः जायते**=उस-उस शरीर के साथ फिर उत्पन्न-सा होता है। २. **भूतः**-नित्य वर्त्तमान **सः**-यह प्राण **भूतम्**-भूतकालावच्छिन्न वस्तु को, **भविष्यत्** भाविकालावच्छिन्न उत्पत्स्यमान वस्तु को **शचीभिः**-अपनी शक्तियों से **प्रविवेश**=इसप्रकार प्रविष्ट होता है, जैसेकि **पिता पुत्रम्**-पिता अपने पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होता है। प्राण पिता है, यह उत्पन्न जगत् उसका पुत्र है। इसमें वह प्रविष्ट है।

भावार्थ—सूर्यादि सब देवों में वह प्राणात्मा प्रभु प्रविष्ट हुए-हुए हैं, इसी से ये देव देवत्व को प्राप्त हुए हैं। भूत, भविष्यत् सभी वस्तुओं में प्रभु ही अपनी शक्तियों से प्रविष्ट हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**मध्येज्योतिर्जगती** ॥

सूर्यात्मा प्रभु

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्। यदङ्ग स
तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत्कदा चन॥ २१॥

१. **हंसः**=(हन्ति गच्छति) सर्वत्र गतिवाला जगत्प्राणभूत प्रभु **सलिलात्**=इस जलप्रवाहवत् प्रवाहरूप संसार से **उच्चरन्**=ऊपर उठता हुआ **एकं पादं नः उत्खिदति**-एक पाद (अंश) को उद्धृत नहीं करता। एक पाद को इस ब्रह्माण्ड में निश्चल स्थापित करता है। '**त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः**'। २. हे **अंग**=प्रिय! **सः**=वह ऊपर उठता हुआ सूर्यात्मा प्रभु **यत्**-यदि **तम्**-उस यहाँ निहित एक पाद को **उत्खिदेत्**=उद्धृत करले तो **न एव अद्य न श्वः स्यात्**-'आज और कल' का यह सब व्यवहार समाप्त हो जाए, **न रात्री न अहः स्यात्**-न रात हो और न दिन हो और **कदाचन**=कभी भी न **व्युच्छेत्**-(व्युच्छनम् उषसः प्रादुर्भावः) उषा

का प्रादुर्भाव ही न हो। सूर्यात्मा प्रभु के अभाव में काल व्यवहार का सम्भव है ही नहीं।

भावार्थ—यह जगत् सलिलवत् प्रवाहमय है। इसके निर्माता प्रभु के एकदेश में इसकी स्थिति है। प्रभु के तीन चरण इस ब्रह्माण्ड के ऊपर हैं, प्रभु का एक पाद ही यहाँ ब्रह्माण्ड में है। प्रभु यदि यहाँ न हों तो सूर्यादि के प्रकाश के अभाव में 'आज, कल, दिन रात व उषा' आदि सब काल-व्यवहारों की समाप्ति ही हो जाए।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अष्टाचक्रं, एकनेमि, सहस्राक्षरम्

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ २२॥

१. **अष्टाचक्रम्**-'रस, रुधिर, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा, वीर्य व ओजस्' नामक आठ धातुरूप आठ चक्रोंवाला यह शरीररूप रथ **एकनेमि वर्तते**-प्राणरूप एकनेमि से वेष्टित हुआ-हुआ प्रवृत्त होता है। यह **सहस्राक्षरम्** सहस्रों अक्षों से युक्त है ('रः' मत्वर्थीयः) अथवा बहुविध व्याप्तिवाला है (अश् व्याप्तौ)। यह रथात्मक शरीर **पुरः**-'पुरस्तात्' पूर्वभाग में **प्र** (वर्तते) प्रवृत्त होता है और **पश्चा नि** (वर्तते) फिर पीछे लौटता है। इसप्रकार प्राण प्राणिशरीरों में प्रवेश करके प्रवृत्ति व निवृत्ति को उत्पन्न करता है। २. सूत्रात्मभावेन स्थित वह प्राणात्मा प्रभु **अर्धेन** अपने एक पाद (अंश) से **विश्वं भुवनम्** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को **जजान**-प्रादुर्भूत करता है। **अस्य** इस सूत्रात्मा प्राण का **यत्**-जो अन्य **अर्धम्**-आधा अंश है, वह अपरिच्छिन्न अंश **क-तमः**-(कः सुखम्) अत्यन्त आनन्दमय है, **सः केतुः**-वह प्रकाशमय (A ray of light) है।

भावार्थ—प्रभु ने इस शरीर रथ को रस आदि आठ धातुरूप चक्रोंवाला बनाया है, प्राण ही इन चक्रों की एकनेमि (वेष्टन) है। यह शरीर रथ हजारों अक्षोंवाला है, आगे और पीछे इसकी प्रवृत्ति होती है। प्राणात्मा प्रभु के एकदेश में ब्रह्माण्ड की सब क्रियाएँ हो रही हैं। प्रभु के त्रिपाद् तो आनन्दमय व प्रकाशमय ही हैं

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

क्षिप्रधन्वा प्राण

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते॥ २३॥

१. **यः**-जो प्राण **अस्य** इस **विश्वजन्मनः**-नानारूप जन्मोंवाले **चेष्टतः** व्याप्रियमाण—चेष्टा करते हुए—**विश्वस्य** सम्पूर्ण जगत् का **ईशे**-ईश है, और **अन्येषु**=(अन प्राणने) प्राणिशरीरों में **क्षिप्रधन्वने**=(धवि गत्यर्थः) शीघ्रता से गति व व्याप्तिवाला है। हे प्राण! **तस्मै ते** तथाविध तुझे **नमः अस्तु**=नमस्कार हो।

भावार्थ—प्राणात्मा प्रभु ही इस सम्पूर्ण संसार के ईश हैं। वे ही सब प्राणिशरीरों में प्राणरूप से व्याप्त हैं। हम उनके लिए नतमस्तक होते हैं।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्रह्मणा मा अनु तिष्ठतु

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु॥ २४॥

१. **यः**-जो **अस्य** इस **सर्वजन्मनः**=नानारूप जन्मोंवाले **चेष्टतः**-चेष्टा करते हुए

सर्वस्य-सम्पूर्ण जगत् का **ईशे** ईश है। वह **अतन्द्रः**-सब प्रकार के आलस्य से रहित—सदा सर्वत्र गतिवाला—**धीरः**-ज्ञानशक्ति से युक्त **प्राणः**-प्राणात्मा प्रभु **ब्रह्मणा**-वेदज्ञान द्वारा **मा अनुतिष्ठतु**=मेरे साथ स्थित हो—वेदज्ञान द्वारा मैं उस प्राणात्मा प्रभु को प्राप्त करूँ।

भावार्थ—प्राणात्मा प्रभु सबके ईश हैं—वे अतन्द्र व धीर हैं। मैं वेदज्ञान द्वारा प्रभु को प्राप्त करूँ।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सदा जागरित

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन॥ २५ ॥

१. वे प्राणात्मा प्रभु **सुप्तेषु**=निद्रापरवश प्राणियों में **ऊर्ध्वः जागार**=उत्थित हुए-हुए जाग रहे हैं। रक्षक के सोने का काम ही क्या? **ननु**=निश्चय से सब प्राणी तो **तिर्यङ् निपद्यते**-तिर्यग् अवस्थित हुए-हुए निद्रापरवश होकर सोते हैं, अतः रक्षकभूत आपने तो जागना ही है। २. प्राणियों के **सुप्तेषु**-निद्रापरवश हो जाने पर **अस्य**=उन शरीरों के मध्यवर्ती प्राणात्मा प्रभु के **सुप्तम्**-सोने को **कश्चन**-कोई भी **न अनुशुश्राव**-नहीं सुनता है। प्राणात्मा प्रभु कभी सोते नहीं।

भावार्थ—सब प्राणी सो जाते हैं—सदा जागरित प्राणात्मा प्रभु रक्षा करते हैं, उनका सोना अप्रसिद्ध है।

ऋषिः—**भार्गवो वैदर्भिः** ॥ देवता—**प्राणः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्** ॥

अपां गर्भम् इव

प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि॥ २६ ॥

१. हे **प्राण**=प्राणात्मन् प्रभो! **मत्**=मुझसे **मा पर्यावृतः**=पराङ् मुख मत होओ। हे प्राण! तू **मत् अन्यः न भविष्यसि**=कभी भी मुझसे पृथक् न होगा। मेरे साथ तू तादात्म्यापन्न ही है। हे **प्राण**=प्राणात्मन् प्रभो! मैं **जीवसे**=उत्कृष्ट जीवन की प्राप्ति के लिए **त्वा**-आपको **मयि**=अपने में **बध्नामि**=इसप्रकार बाँधता हूँ, **इव**=जैसे **अपां गर्भम्**=उदक (जल) गर्भभूत वैश्वानर अग्नि को अपने अन्दर धारण करते हैं।

भावार्थ—हम प्राणात्मा प्रभु से कभी पृथक् न हों। प्रभु को इसप्रकार अपने अन्दर धारण करें जैसेकि जल गर्भभूत वैश्वानर अग्नि को धारण करते हैं।

प्राणात्मा प्रभु (ब्रह्म) को धारण करनेवाला यह 'ब्रह्मा' बनता है—बढ़ा हुआ। यही अगले सूक्त का ऋषि है। ब्रह्म की ओर चलनेवाला 'ब्रह्मचारी' देवता है—

५. [पञ्चमं सूक्तम्]

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**पुरोऽतिजागताविराड्गर्भात्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्मचारी का आचार्य-पालन

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति॥ १ ॥

१. **ब्रह्मचारी**-(ब्रह्मणि वेदात्मके चरितुं शीलं यस्य) वेदात्मक ब्रह्म में विचरण करनेवाला विद्यार्थी **उभे**-दोनों **रोदसी**=द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को—**इष्णन्**=उन्नत (Promote) करता हुआ—तेज से व्याप्त करता हुआ, अर्थात् वीर्यरक्षण द्वारा शरीर व मस्तिष्क को तेजस्वी

व दीप्त बनाता हुआ **चरति** गतिवाला होता है। **तस्मिन्** उस ब्रह्मचारी में **देवाः**-सब इन्द्रियाँ (वाणी आदि के रूप में शरीर में रहनेवाले अग्नि आदि देव) **संमनसः** समान मनवाले, अर्थात् अनुग्रहबुद्धिवाले **भवन्ति**=होते हैं। अथवा सब **देवाः**=ज्ञानी उपाध्याय वर्ग उसपर अनुग्रह बुद्धियुक्त होते हैं। २. **सः** वह ब्रह्मचारी **पृथिवीम्**-शरीररूप पृथिवी को **च दिवम्** तथा मस्तिष्करूप द्युलोक को **दाधार** धारण करता है। **सः** वह ब्रह्मचारी **तपसा**-तप के द्वारा—'ऋत, सत्य, शान्त-स्वभाव, मन व इन्द्रियों के दमन तथा श्रुत (शास्त्र श्रवण) के द्वारा—**आचार्यम्**-अपने आचार्य को **पिपर्ति** पालित करता है—आचार्य की पूर्णता करता है। आचार्य ज्ञान देता है—यह ब्रह्मचारी तप के द्वारा उस ज्ञान का ग्रहण करता हुआ आचार्य के अभीष्ट कर्म की पूर्ति करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारी वीर्यरक्षण द्वारा शरीर व मस्तिष्क को उन्नत बनाता है। अपनी सब इन्द्रियों व मन को प्रशस्त करता है। शरीर व मस्तिष्क का धारण करता हुआ तपस्या द्वारा आचार्य-प्रदत्त ज्ञान का ग्रहण करता हुआ आचार्य को पालित करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**पञ्चपदाबृहतीगर्भाविराट्शक्वरी** ॥

देव, मनुष्य आदि सब जगत् का ब्रह्मचर्य द्वारा धारण

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन्त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति॥ २॥

१. **ब्रह्मचारिणम्**-ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुए पुरुष के लिए **पितरः**-रक्षणात्मक कार्यों में व्यापृत क्षत्रिय, **देवजनाः** (दिव् व्यवहारे) शुद्ध व्यवहार करनेवाले वैश्यजन, **पृथग् देवाः** (दिव् गतौ) अलग-अलग प्रकार के कर्म करनेवाला श्रमिक वर्ग, **सर्वे**-ये सब **अनुसंयन्ति**=अनुकूल गतिवाले होते हैं। **गन्धर्वाः** ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले ब्राह्मण तो **एनम् अनु आयन्** इसके अनुकूल गतिवाले होते ही हैं। ब्रह्मचारी को चातुर्वर्ण्य की अनुकूलता प्राप्त होती है। २. शरीर में जो **त्रयः**--तीन देव हैं—वाणीरूप से अग्नि, प्राणरूप से वायु तथा चक्षु के रूप में सूर्य, इन **सर्वान् देवान्** सब देवों को **सः**-वह ब्रह्मचारी **तपसा पिपर्ति**-तप के द्वारा अपने में सुरक्षित करता है। ये अग्नि, वायु, सूर्यरूप देव ही अपनी महिमा से **त्रिंशत्** तीस, **त्रिशताः**-तीन सौ व **षट् सहस्राः**-छह हज़ार हो जाते हैं। इन सब देवशक्तियों को ब्रह्मचारी अपने में धारण करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारी को 'क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व ब्राह्मण' इन सबकी अनुकूलता प्राप्त होती है। यह अपने तप से सब देवों को अपने में पालित करता है। यहाँ शूद्र के 'पृथक् देवाः' शब्द से यह संकेत स्पष्ट है कि इन शूद्रों का इकट्ठ (Union) नहीं होना चाहिए, अन्यथा ये अनसूयापूर्वक ब्राह्मणादि की सेवा नहीं कर सकेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**उरोबृहती** ॥

गर्भम् अन्तः

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥ ३॥

१. **आचार्यः**-आचार्य **ब्रह्मचारिणम्**-ब्रह्मचारी को **उपनयमानः**=अपने समीप प्राप्त कराता हुआ **अन्तः**-विद्याशरीर के मध्य में **गर्भः कृणुते**-गर्भरूप से स्थापित करता है। **तम्**-उस ब्रह्मचारी को **तिस्त्रः रात्रीः**-तीन रात्रियों तक—प्रकृति, जीव व परमात्मा-विषयक अज्ञानान्धकार

के दूर होने तक **उदरे बिभर्ति**=अपने अन्दर धारण करता है। आजकल की भाषा में प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षणालयों में ज्ञान प्राप्त कर लेने तक वह आचार्यकुल में ही रहता है। २. तीन रात्रियों की समाप्ति पर **जातं तम्**=विद्यामय शरीर से प्रादुर्भूत हुए-हुए उस ब्रह्मचारी को—स्नातक को—**द्रष्टुम्**=देखने के लिए **देवाः अभिसंयन्ति** देव आभिमुख्येन प्राप्त होते हैं। देव उसे देखने के लिए उपस्थित होते हैं। **(स हि विद्यातस्तं जनयति। तच्छ्रेष्ठं जन्म। शरीरमेव मातापितरौ जनयतः।** आपस्तम्ब १।१।१५-१७)

भावार्थ—आचार्य विद्यार्थी को अपने समीप अत्यन्त सुरक्षित रूप में रखता है। वहाँ वासनाओं व विलासों से दूर रखता हुआ वह उसे 'विकसित शरीर, मन व मस्तिष्कवाला' बनाता है। इसप्रकार विकसित जीवनवाले विद्यार्थी को देखने के लिए विद्वान् उपस्थित होते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मचारी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

तीन समिधाएँ

इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥ ४॥

१. **इयं पृथिवी**=यह पृथिवी **समित्**-उस ब्रह्मचारी की पहली समिधा है। **द्यौः द्वितीया**-द्युलोक दूसरी समिधा बनती है **उत**=और **अन्तरिक्षम्**-अन्तरिक्ष तीसरी **समिधा पृणाति** समिधा से अपने को पूरित करता है। पृथिवी के पदार्थों का ज्ञान पहली समिधा है—इससे वह शरीररूप पृथिवीलोक को बड़ा सुन्दर बनाता है। अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान दूसरी समिधा है—इससे वह अपने हृदयान्तरिक्ष को पवित्र व शान्त बनाता है। द्युलोक के पदार्थों का ज्ञान तीसरी समिधा है—इससे वह अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को बड़ा उज्ज्वल व दीप्त बनाता है। २. यह **ब्रह्मचारी**=ज्ञान में विचरण करनेवाला विद्यार्थी **समिधा**-ज्ञानदीप्ति के द्वारा, **मेखलया**-कटिबद्धता—कार्य को दृढ़ता से करने के द्वारा, **श्रमेण**=श्रम की वृत्ति के द्वारा तथा **तपसा**-तपस्या के द्वारा **(ऋतं तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः, दमस्तपः, शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपः, 'भूर्भुवः सुवः' ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः**—तै० आ० १०।८ **) लोकान् पिपर्ति**=शरीरस्थ 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक को—शरीर, मन व मस्तिष्क को—पूरित करता है—इनकी कमी को दूर करता है'।

भावार्थ—ब्रह्मचारी आचार्यकुल में 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है। 'ज्ञानदीप्ति, कटिबद्धता (दृढ़ निश्चय), श्रम व तप के द्वारा वह 'शरीर, मन व मस्तिष्क' रूप तीन लोकों का पूर्ण विकास करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मचारी**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सर्वप्रथम आचार्य 'ब्रह्म'

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ ५॥

१. जो सर्वजगत् का कारण, सत्यज्ञानादि लक्षणयुक्त 'ब्रह्म' है, उस **ब्रह्मणः**=ब्रह्म से ही **ब्रह्मचारी**=ज्ञान प्राप्त करनेवाला **पूर्वः जातः**=(प्रथमम् उत्पन्नः—सा०) सबसे प्रथम हुआ। सबसे पूर्व ब्रह्म ने ही 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिराः' इन (पूर्वे चत्वारः) सर्वाधिक मेधावी चार ऋषियों को वेदज्ञान दिया। ये ब्रह्म के ही ब्रह्मचारी हुए। यह ब्रह्मचारी **घर्मं वसानः**-संयमजनित शक्ति से दीप्त रूप को धारण करता हुआ ऊपर उठा। २. **तस्मात्**=उस ब्रह्मचारी से **ब्राह्मणम्**-ज्ञानियों का 'स्व'भूत (सम्पत्तिरूप) **ज्येष्ठम्**=प्रशस्यतम व वृद्धतम **ब्रह्म**-वेदात्मक ज्ञान **जातम्**=प्रादुर्भूत हुआ, अर्थात् इस ब्रह्मचारी ने अपनी श्रेष्ठतम ज्ञानरूप सम्पत्ति को प्राप्त किया। **च**=और इस

ब्रह्मचारी में **सर्वे देवाः**-सब दिव्य गुण **अमृतेन साकम्**-अमृतत्व (नीरोगता) के साथ प्रादुर्भूत हुए। इसका मस्तिष्क ज्ञान से, हृदय दिव्य गुणों से तथा शरीर नीरोगता से परिपूर्ण होता है।

भावार्थ—सबसे प्रथम ब्रह्म के समीप 'अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा' ने ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदज्ञान को प्राप्त किया। इनका मस्तिष्क ब्रह्म (ज्ञान) से, हृदय देवों (दिव्य गुणों) से तथा शरीर नीरोगता से (अमृतत्व से) परिपूर्ण हुआ।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**शाक्वरगर्भाचतुष्पदाजगती** ॥

समावर्तन

ब्रह्मचार्ये᳡ति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ ६॥

१. आचार्यकुल में पढ़कर घर के प्रति वापस आता हुआ **ब्रह्मचारी** ज्ञान में विचरण करनेवाला युवक **एति** घर के प्रति आ रहा है। यह **समिधा समिद्धः** ज्ञानदीप्ति से दीप्त है, **कार्ष्णं वसानः** कृष्ण मृगचर्म को ओढ़े हुए है। **दीक्षितः** इसने व्रतों को ग्रहण किया है। **दीर्घश्मश्रुः**-बड़े बड़े मुखस्थ बालोंवाला है। स्पष्ट है कि आचार्यकुल में बहुत वस्त्रों की व्यवस्था न थी, न ही वहाँ नापित का स्थान था। २. **सः**-वह ब्रह्मचारी **सद्यः** शीघ्र ही **पूर्वस्मात्** (समुद्रात्)=ब्रह्मचर्याश्रमरूप पूर्वसमुद्र से **उत्तरं समुद्रम्**=गृहस्थरूप उत्तरसमुद्र को **एति**-प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। **लोकान् संगृभ्य**-पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक आदि तीनों लोकों का सम्यक् ज्ञान ग्रहण करके—शरीर (पृथिवी) को दृढ़, हृदय (अन्तरिक्ष) को पवित्र व मस्तिष्क (द्युलोक) को दीप्त बनाकर—**मुहुः आचरिक्रत्**-अतिशयेन कर्त्तव्य-कर्मों में प्रवृत्त होता है।

भावार्थ—आचार्यकुल में तपस्या के द्वारा ज्ञानदीप्ति से दीप्त होकर यह ब्रह्मचारी आचार्य से दीक्षा लेकर घर लौटता है—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है और 'दृढ़ शरीर, पवित्र हृदय व दीप्त मस्तिष्क' बनकर कर्त्तव्य-कर्मों को सम्यक्तया करनेवाला बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**विराड्गर्भात्रिष्टुप्** ॥

ब्रह्म, अपः लोकं, प्रजापतिम्

ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वाऽमृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वाऽसुरांस्ततर्ह॥ ७॥

१. **अमृतस्य योनौ गर्भः भूत्वा ब्रह्मचारी**-ज्ञानामृत के केन्द्र आचार्यकुल में—आचार्यगर्भ में रहता हुआ अतएव किन्हीं भी वासनाओं के आक्रमण से आक्रान्त न होकर सदा ज्ञान में विचरता हुआ यह ब्रह्मचारी **ब्रह्म**-ज्ञान को **अपः**-यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों को **लोकम्** दर्शनशक्ति—वस्तुओं को वास्तविक रूप में देखने की शक्ति को **जनयन्** अपने में प्रादुर्भूत करता हुआ तथा उस **परमेष्ठिनं विराजं प्रजापतिम्**-परम स्थान में स्थित, विशिष्ट दीप्तिवाले, प्रजाओं के रक्षक प्रभु को (**जनयन्**=) अपने हृदयदेश में प्रादुर्भूत करता हुआ, यह **इन्द्रः** जितेन्द्रिय बनता है तथा **ह**-निश्चय से (इन्द्रः) **भूत्वा** जितेन्द्रिय बनकर **असुरान् ततर्ह**-आसुरभावों का हिंसन कर डालता है।

भावार्थ—आचार्य को उपनीत किये हुए ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में धारण करते हुए 'ज्ञान, यज्ञादिक कर्मों, दर्शनशक्ति व प्रभुस्मरण की भावना' से युक्त करना है तभी वह ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय बनकर आसुरभावों का संहार कर पाएगा।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**पुरोऽतिजागताविराड्जगती** ॥

पृथिवीं दिवञ्च

आचार्य∫स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवाः संमनसो भवन्ति॥ ८॥

१. **आचार्यः**=आचार्य(=ब्रह्मचारी को ज्ञान का चारण करानेवाला) **उभे इमे**=इन दोनों **नभसी**=(नह बन्धने) परस्पर सम्बद्ध **उर्वी गम्भीरे**=विशाल व गम्भीर **पृथिवीं दिवं च**=पृथिवी व द्युलोक को **ततक्ष**=बनाता है। आचार्य ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में सुरक्षित रखता हुआ और वासनाओं से आक्रान्त न होने देता हुआ विस्तृत शक्तिवाले शरीररूप पृथिवीलोक से तथा गम्भीर ज्ञानवाले मस्तिष्करूप द्युलोक से युक्त करता है। ब्रह्मचारी में वह शक्ति व ज्ञान को परस्पर सम्बद्ध (नभसी) करने का यत्न करता है। २. **ब्रह्मचारी**=ज्ञान में विचरण करनेवाला यह शिष्य **ते**=उन दोनों शरीररूप पृथिवीलोक को तथा मस्तिष्करूप द्युलोक को **तपसा**=तप के द्वारा **रक्षति**=अपने में सुरक्षित करता है। **तस्मिन्**=उस ब्रह्मचारी में **देवाः**=दिव्य वृत्तियाँ **संमनसः**=संगत मनवाली **भवन्ति**=होती हैं। यह ब्रह्मचारी दिव्य वृत्तियों से युक्त जीवनवाला बनता है। अथवा यह 'माता-पिता, आचार्य व अतिथि' आदि देवों का प्रिय बनता है।

भावार्थ—आचार्य विद्यार्थी के जीवन में शक्ति व ज्ञान भरने का यत्न करता है। यह विद्यार्थी तप से अपने में ज्ञान व शक्ति का रक्षण करता हुआ देवों का प्रिय बनता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

ते समिधौ

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥ ९॥

१. **ब्रह्मचारी**=ज्ञान में विचरण करनेवाला यह ब्रह्मचारी **इमाम्**=इस **पृथिवीम्**=शक्तियों के विस्तारवाले **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि यस्याम्) प्राणियों के निवासस्थानभूत व शरीररूप पृथिवीलोक को **भिक्षाम् आजभार**=भिक्षारूप से प्राप्त करता है। **प्रथमः**=शक्तियों के विस्तारवाला यह ब्रह्मचारी **दिवं च**=ज्ञानज्योति से देदीप्यमान मस्तिष्करूप द्युलोक को भी आचार्य से भिक्षारूप में प्राप्त करता है। २. **ते**=उन दोनों को—शरीर व मस्तिष्क को—**समिधौ कृत्वा**=तेजस्विता व ज्ञान से दीप्त बनाकर यह **उपास्ते**=प्रभु का उपासन करता है। **तयोः**=उन दोनों में—पृथिवी व द्युलोक में **विश्वा भुवनानि आर्पिता**=सब भुवन अर्पित हैं, अर्थात् शरीर व मस्तिष्क के ठीक होने पर अन्य सब अंग-प्रत्यंग स्वयं ठीक रहते ही हैं। मानस आह्लाद तभी सम्भव है जबकि शरीर व मस्तिष्क स्वस्थ हों।

भावार्थ—ब्रह्मचारी आचार्य से पृथिवी व द्युलोक की भिक्षा माँगता है—अन्य सब लोक तो इनमें ही अर्पित हैं। शक्तिसम्पन्न शरीर व ज्ञानदीप्त मस्तिष्क इस ब्रह्मचारी को सर्वांग सुन्दर जीवनवाला बना देते हैं, ऐसा बनना ही प्रभु का उपासन है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

ब्राह्मण की दो निधि

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत्केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥ १०॥

१. ज्ञानप्रधान जीवनवाला व्यक्ति 'ब्राह्मण' है। 'अपराविद्या और पराविद्या' ये दो ब्राह्मण

की निधि हैं। अपराविद्या 'द्युलोक व द्युलोक से नीचे अन्तरिक्षलोक व पृथिवीलोक' का ज्ञान देती है और पराविद्या दिवस्पृष्ठ से भी परे ब्रह्मलोक का ज्ञान प्राप्त कराती है। **अन्यः** एक अपराविद्यारूप निधि **अर्वाक्**-दिवस्पृष्ठ से नीचे के पदार्थों का ज्ञान है। **अन्यः**--दूसरी पराविद्यारूप निधि **दिवः पृष्ठात् परः**--दिवस्पृष्ठ से ऊपर ब्रह्म का ज्ञान है। ये दोनों **निधी**-ज्ञानकोश **ब्राह्मणस्य गुहा निहितौ** ज्ञानी की हृदयगुहा में स्थापित हुए हैं। २. **तौ** उन दोनों निधियों को **ब्रह्मचारी** यह ज्ञान में विचरण करनेवाला व्यक्ति **तपसा रक्षति**-तप के द्वारा रक्षित करता है। यह ज्ञानी पुरुष **तत् केवलं ब्रह्म**-उस आनन्द में विचरनेवाले (के वलति) आनन्दरूप प्रभु को **विद्वान्**-जानता हुआ **कृणुते**-(कृ to kill) सब वासनाओं का संहार कर डालता है।

भावार्थ—अपराविद्या व पराविद्यारूप ब्राह्मण की दो निधि हैं। तप के द्वारा इनका रक्षण होता है। ब्रह्मज्ञानी पुरुष सब वासनाओं का संहार कर डालता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दो अग्नियाँ

अर्वाग॒न्य इ॒तो अ॒न्यः पृ॑थि॒व्या अ॒ग्नी स॒मेतो॒ नभ॑सी अन्त॒रेमे।
तयोः॑ श्रयन्ते र॒श्मयोऽधि॑ दृ॒ढास्ताना ति॑ष्ठति॒ तप॑सा ब्रह्मचा॒री॥ ११॥

१. **अन्यः अर्वाक्**=एक तेजस्विता की अग्नि (घर्म) यहाँ नीचे पृथिवीलोक में है। शरीररूप पृथिवीलोक तेजस्विता की अग्नि से सम्पन्न है। **इतः पृथिव्या अन्यः**-यहाँ पृथिवी से दूर द्युलोक में एक अन्य ज्ञानाग्नि है। **इमे**-ये **अग्नी**-तेजस्विता व ज्ञान की दो अग्नियाँ **नभसी**-(नह बन्धने) परस्पर सम्बद्ध हुई हुई **अन्तरा**=इस शरीर के मध्य में **समेतः**=संगत होती हैं—सम्यक् प्राप्त होती हैं। २. **तयोः अधि** उन पृथिवी व द्युलोक में **दृढाः** परस्पर मेल से अतिप्रबल **रश्मयः**-तेज (शक्ति) व ज्ञान की किरणें **श्रयन्ते**-आश्रय करती हैं। **तान्**=उन रश्मियों को **तपसा**-तप के द्वारा **ब्रह्मचारी आतिष्ठति**-समन्तात् रक्षित करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारी तप के द्वारा अपने जीवन में तेजस्विता व ज्ञान की अग्नियों को धारण करता हुआ चमकता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**शाक्वरगर्भाचतुष्पदाविराडतिजगती** ॥

मेघरूप ब्रह्मचारी

अ॒भि॒क्रन्द॑न् स्त॒नय॑न्नरु॒णः शि॑ति॒ङ्गो बृ॒हच्छे॑पोऽनु॒ भूमौ॑ जभार।
ब्र॒ह्म॒चा॒री सि॑ञ्चति॒ सानौ॒ रेतः॑ पृथि॒व्यां तेन॑ जीवन्ति प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः॥ १२॥

१. **अभिक्रन्दन्**-भूमि का मानो आह्वान करता हुआ, **स्तनयन्**-विद्युत् की गर्जनावाला, **अरुणः**-लाल भूरा-सा (Reddish brown) **शितिंगः** श्वेत व काले वर्णों में (शिति white, black) गतिवाला (पानी से भरा होने पर 'काला', बरस जाने पर 'श्वेत') मेघ, **बृहत् शेपः** (प्रभूतं प्रजननम्—सा०) अपने प्रभूत प्रजनन सामर्थ्य को **भूमौ अनुजभार**-इस पृथिवी पर प्राप्त कराता है। २. यह **ब्रह्मचारी**=(ब्रह्म wealth, food) ऐश्वर्य व भोजन के साथ विचरनेवाला मेघ **सानौ**-पर्वत शिखरों पर तथा **पृथिव्याम्** पृथिवी पर **रेतः सिञ्चति**=जल को सिक्त करता है। इस रेतःसेचन से ही तो **चतस्त्रः प्रदिशः** चारों प्रकृष्ट दिशाएँ—इन दिशाओं में स्थित प्राणी **जीवन्ति**=जीते हैं।

भावार्थ—मेघ भी मानो ब्रह्मचारी है। जल की ऊर्ध्वगति से बनता हुआ यह हमें भी ऊर्ध्वरेता बनने की प्रेरणा देता है। यह पृथिवी पर जब अपने रेतस् का सेचन करता है, तब अन्नादि की उत्पत्ति होकर सब प्राणियों का जीवन सम्भव होता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

सर्वमहान् 'ब्रह्मचारी' प्रभु

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन्ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः॥ १३॥

१. सदा ज्ञान के साथ विचरनेवाले प्रभु सर्वमहान् 'ब्रह्मचारी' हैं। ये **ब्रह्मचारी**-ज्ञानस्वरूप में विचरनेवाले प्रभु **अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् अप्सु**-अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु व जलों में **समिधम्**=दीप्ति को **आदधाति**-स्थापित करता है। अग्नि में तेज, सूर्य-चन्द्रमा में प्रभा, वायु में जीवन-शक्ति व प्रवाह तथा जलों में रस प्रभु ही तो स्थापित करते हैं। २. **तासाम्**=इन जल आदि की **अर्चींषि**-दीप्तियाँ **पृथक्**-अलग-अलग **अभ्रे चरन्ति**-उदकपूर्ण मेघ में विचरण करती हैं। **तासाम्**-इन जल आदि में स्थापित दीप्तियों का ही कार्यरूप **आज्यं पुरुषो वर्षम् आपः**=आज्य, पुरुष, वृष्टि व जल हैं। 'आज्य' का अर्थ घृत है। इसके साधनभूत गौ आदि की समृद्धि होती है। गौवों के ठीक होने पर उत्तम सन्तान की समृद्धि 'पुरुष' शब्द से कही जा सकती है। इन मेघों से समय पर '**वर्षम्**'=वृष्टि होती है और उससे 'आप', अर्थात् वापी, कूप-तड़ाग आदि की समृद्धि होती है।

भावार्थ—प्रभु ने 'अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु व जलों' में समिध् (तेज) को स्थापित किया है। इन सबकी दीप्तियाँ मेघ में एकत्र होती हैं। उनसे गवादि पशुओं, पुरुषों, वृष्टि व जलों की वृद्धि होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आचार्य; मृत्युः, सत्वानः, जीमूताः

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम्॥ १४॥

१. **आचार्यः**=आचार्य **मृत्युः**=मृत्यु है। गर्भ में धारण करके द्वितीय जन्म देने के कारण और इसप्रकार उपनीत ब्रह्मचारी को द्विज बनाने के कारण आचार्य मृत्यु है। **वरुणः**=पाप से निवारित करनेवाला यह आचार्य वरुण है। **सोमः**=चन्द्र के समान आह्लादमय व शान्त वृत्तिवाला होने से सोम है। **ओषधयः**=दोषदहन शक्ति का आधान करनेवाला (उष दाहे) आचार्य 'ओषधयः' है। **पयः**=दोषदहन द्वारा शक्ति का आप्यायन करने से आचार्य 'पयः' है। २. इस आचार्य के **सत्वानः**=समीप सदनशील ये विद्यार्थी **जीमूताः आसन्**=(जीवनं भूतं बद्धं येषु) जीवन-शक्ति से परिपूर्ण हुए। **तैः**=उन आचार्यों के समीप रहकर जीवन को अपने में बाँधनेवाले ब्रह्मचारियों से **इदं स्वः आभृतम्**=यह सुख, प्रकाश व तेज धारण किया गया है।

भावार्थ—आचार्य को विद्यार्थी को नवीन जीवन देने से 'मृत्यु' नाम दिया गया है और विद्यार्थी नवजीवन को अपने में बद्ध करने के कारण 'जीमूत' कहलाया है। ब्रह्मचारी अपने आचार्य के जीवन व ज्ञान से 'प्रकाश व तेज' धारण करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्** ॥

आचार्य ज्ञान देते हैं, विद्यार्थी दक्षिणा

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत्स्वान्मित्रो अध्यात्मनः॥ १५॥

१. **आचार्यः**=आचार्य **वरुणः भूत्वा**=पाप व द्वेष का निवारण करनेवाला होकर **केवलं**

घृतम्-आनन्दमय प्रभु में (के+वल्) विचरण करनेवाले ज्ञान को **अमा कृणुते**-विद्यार्थी के साथ करता है। आचार्य विद्यार्थी के लिए प्रभु से दिये गये ज्ञान को देनेवाला बनता है। २. **तत्** तब **ब्रह्मचारी**-ब्रह्मचारी भी **मित्रः**-स्नेहवाला बनकर या पापों से अपने को बचानेवाला बनकर, **यत् यत् ऐच्छत्** जिस जिस वस्तु को आचार्य चाहता है, उन सब **स्वान्**-धनों को—आत्मीय वस्तुओं को—**आत्मनः अधि**-अपने से **प्रजापतौ प्रायच्छत्** प्रजाओं के रक्षक आचार्य में प्राप्त कराता है।

भावार्थ—आचार्य विद्यार्थी को ज्ञान देता है। विद्यार्थी आचार्य के लिए इष्ट दक्षिणा देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मचारी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आचार्य व राजा का ब्रह्मचारी होना

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी॥ १६॥

१. **आचार्य** आचार्य **ब्रह्मचारी**-ब्रह्म(ज्ञान) में विचरण करनेवाला ही होना चाहिए। इसी प्रकार **प्रजापतिः**-प्रजारक्षक राजा भी **ब्रह्मचारी**-ज्ञान में विचरण करनेवाला ही होता है। ऐसा ही **प्रजापतिः** राजा **विराजति**-विशिष्ट दीप्ति व शासनशक्तिवाला बनता है। यह **विराट्**-विशिष्ट दीप्तिवाला **इन्द्रः** जितेन्द्रिय राजा ही **वशी अभवत्**-प्रजाओं को वश में रखनेवाला होता है। अजितेन्द्रिय राजा कभी प्रजा पर आधिपत्य नहीं कर पाता '**जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः**'।

भावार्थ—आचार्य व राजा का ब्रह्मचारी होना आवश्यक है, तभी वे विद्यार्थियों व प्रजा को धर्म के मार्ग पर चला सकेंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मचारी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मचर्य द्वारा 'राष्ट्ररक्षण व शिष्य-निर्माण'

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ १७॥

१. **राजा**-शासक **ब्रह्मचर्येण तपसा**=ब्रह्मचर्यरूप तप के अनुष्ठान से ही **राष्ट्रं विरक्षति**-राष्ट्र का सम्यक् रक्षित करनेवाला होता है। **आचार्यः**-आचार्य भी **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्य के द्वारा **ब्रह्मचारिणम् इच्छते**-शिष्य को ब्रह्मचारी बनाने की कामना करता है। ब्रह्मचर्य के नियम में स्थित आचार्य को ही ब्रह्मचारी प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य के द्वारा ही राजा राष्ट्र का रक्षण करता है और इसी से आचार्य ब्रह्मचारियों का निर्माण कर पाता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**ब्रह्मचारी**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दीप्ति, निर्दोषता, स्वास्थ्य

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥ १८॥

१. **ब्रह्मचर्येण**-ब्रह्मचर्य के द्वारा—जितेन्द्रिय बनकर शक्तिरक्षण के द्वारा—**कन्या** एक दीप्त जीवनवाली (कन् दीप्तौ) युवति **युवानं पतिं विन्दते**=युवा पति को—रोग आदि बुराइयों से रहित व शक्ति आदि उत्तम गुणों से युक्त पति को (यु मिश्रणामिश्रणयोः) प्राप्त करती है एवं ब्रह्मचर्य के दो लाभों का यहाँ संकेत हुआ है (क) जीवन दीप्त बनता है तथा (ख) रोगादि दोषों से

रहित व स्फूर्ति आदि गुणों से युक्त होता है। २. **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्य से ही **अनड्वान्**=(अनः वहति) गाड़ी को खैंचनेवाला बैल, तथा **अश्वः**-(मार्गं अश्नुते) मार्ग का व्यापन करनेवाला घोड़ा **घासं जिगीर्षति**=घास को निगलने की इच्छा करता है, अर्थात् ब्रह्मचर्य के अभाव में उदरयन्त्र भी शीघ्र विकृत हो जाता है और खान-पान की शक्ति भी जाती रहती है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य के दीप्ति, निर्दोषता व शरीर के अवयवों का ठीक से कार्य करते रहना—ये लाभ हैं, अतः इसका महत्त्व स्पष्ट है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अमृतता व दीप्ति

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत्॥ १९॥

१. **ब्रह्मचर्येण तपसा**=ब्रह्मचर्यरूप तप के द्वारा **देवाः**=सब देव **मृत्युम् अप अघ्नत**-मृत्यु को अपने से दूर भगाते हैं (हन् गतौ)—अमृतत्व व नीरोगता को प्राप्त करते हैं। २. **इन्द्रः**=एक जितेन्द्रिय पुरुष **ह**=निश्चय से **देवेभ्यः**=इन्द्रियों के लिए **ब्रह्मचर्येण**=ब्रह्मचर्य से ही **स्वः आभरत्**-दीप्ति व प्रकाश (सुख) को प्राप्त कराता है। ब्रह्मचर्य से ही इन्द्रियों की शक्ति ठीक बनी रहती है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य से 'नीरोगता व इन्द्रियों की शक्ति की दीप्ति' प्राप्त होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'ओषधियों व काल' का ब्रह्मचर्य

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २०॥

१. **ओषधयः**=फलपाकान्त व्रीहि-यव आदि, **भूतभव्यम्**=उत्पन्न और उत्पत्स्यमान चराचरात्मक जगत् **अहोरात्रे**=दिन और रात, **वनस्पतिः**=शरीरों में प्रकाश की रक्षक (वनानां पालयिता—वन Light) वनस्पतियाँ, **संवत्सरः**=द्वादश मासात्मक काल **ऋतुभिः सह**=वसन्तादि छह ऋतुओं के साथ, ये सब **ब्रह्मचारिणः जाताः**=ब्रह्मचारी के तप की महिमा से ठीक प्रादुर्भाववाले हुए।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में ब्रह्मचर्य का पालन होता है, वहाँ ओषधियाँ, वनस्पतियाँ ठीक समय पर प्रादुर्भूत होती हैं। वहाँ ऋतुओं के साथ कालचक्र भी सुचारुरूपेण चलता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पशु-पक्षियों का ब्रह्मचर्य

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २१॥

१. **पार्थिवाः**-पृथिवी सम्बन्धी, **दिव्याः**-अन्तरिक्ष में होनेवाले, **आरण्याः ग्राम्याः च**=अरण्य में होनेवाले सिंह आदि तथा ग्राम में होनेवाले गौ आदि **ये पशवः**=जो पशु हैं, **अपक्षाः**-पक्षरहित, **पक्षिणः च**=और पंखोंवाले जो भी प्राणी हैं, **ते**=वे सब **ब्रह्मचारिणः जाताः**=ब्रह्मचर्य के प्रभाव से उत्पन्न हुए। वस्तुतः प्रभुप्रदत्त वासना—सहज ज्ञान के अनुसार ये सब ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले बने। ब्रह्मचर्य ही इनके स्वास्थ्य का कारण बना।

भावार्थ—सब पशु-पक्षी प्रभुप्रदत्त वासना के कारण ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए स्वस्थ जीवनवाले हुए।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्रह्मचर्य व प्राणशक्ति

पृथक्सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान्ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम्॥ २२॥

१. **सर्वे प्राजापत्याः**=प्रजापति की सब सन्तानें **आत्मसु**=अपने देहों में **पृथक्**-(नाना स्वस्वसम्बन्धिनः) अलग-अलग स्व स्वसम्बन्धी **प्राणान् बिभ्रति**-प्राणों को धारण करती हैं। **तान् सर्वान्**-उन सब प्राणों को **ब्रह्मचारिणि आभृतम्** ब्रह्मचारी में समन्तात् धारण किया गया **ब्रह्म रक्षति** (ब्रह्म Wealth) वीर्यरूप धन ही सुरक्षित करता है।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य से ही प्राणशक्ति का वर्धन होता है। अब्रह्मचारी की सन्तानें प्राणधारण नहीं करतीं, प्रत्युत मर जाती हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**पुरोबार्हतातिजागतगर्भात्रिष्टुप्** ॥

वीर्यरक्षण का महत्त्व

देवानामेतत्परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ २३॥

१. **देवानाम्**-वासनाओं को जीतने की कामनावाले, देववृत्ति के पुरुषों का **एतत्**-यह शरीरस्थ वीर्य **परिषूतम्**-परिगृहीत हुआ हुआ—शरीर में ही चारों ओर व्याप्त किया हुआ **अनभ्यारूढम्**-रोग आदि से अनाक्रान्त हुआ-हुआ **रोचमानम्**=ज्ञानदीप्ति से दीप्त हुआ-हुआ **चरति**-शरीर में गतिवाला होता है। २. **तस्मात्**=उस शरीरस्थ वीर्य से ही **ब्राह्मणम्**-ब्रह्म सम्बन्धी **ज्येष्ठं ब्रह्म**-सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, **जातम्**=प्रादुर्भूत हुआ **च**-और **अमृतेन साकम्**-अमृत—नीरोगता के साथ **सर्वे देवाः**=सब दिव्य गुण उत्पन्न हुए।

भावार्थ—देववृत्ति के पुरुष वीर्य का शरीर में ही रक्षण करते हैं। यह सुरक्षित वीर्य रोगों से अनाक्रान्त व दीप्त होकर शरीर में गति करता है। इस सुरक्षित वीर्य से 'सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान, दिव्य गुणों व नीरोगता' की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

भ्राजद् ब्रह्म + विश्वेदेवाः

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥ २४॥

१. **ब्रह्मचारी**=ब्रह्मचर्यवाला यह वीर्यरक्षक पुरुष **भ्राजत् ब्रह्म बिभर्ति**-देदीप्यमान ज्ञान को धारण करता है। **तस्मिन् अधि**-उस ब्रह्मचारी में ही **विश्वेदेवाः**-सब दिव्यगुण **समोताः**-सम्बद्ध होते हैं (**'यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति'**—तै० आ० २.१५.१)। २. सब देवों का निवासस्थान बना हुआ यह ब्रह्मचारी **प्राणापानौ**-प्राणापान शक्ति को, **आत्**-और तब **व्यानम्**-व्यान नामक वायु को **वाचम्**-वाक्शक्ति को, **मनः**-सर्वेन्द्रियानुग्राहक अन्तःकरण को, **हृदयम्** अन्तःकरण के निवासस्थानभूत हृदयकमल को **ब्रह्म**-वेदात्मक ज्ञान को **मेधाम्** आशुविद्या ग्रहणकुशला बुद्धि को **जनयन्**=अपने में प्रादुर्भूत करनेवाला होता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारी देदीप्यमान ज्ञान व दिव्य गुणों को धारण करता हुआ अपने में 'प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, प्रभु व मेधा' को प्रादुर्भूत करता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**ब्रह्मचारी** ॥ छन्दः—**२५ आर्च्युष्णिक् (एकावसाना) ;**
२६ मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भात्रिष्टुप् ॥

स्नातक

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम्॥ २५॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते॥ २६॥

१. हे ब्रह्मचर्यात्मक ब्रह्मन्! आप **अस्मासु**=हममें **चक्षुः श्रोत्रम्**-देखने व सुनने की शक्ति को और **यशः**=कीर्ति को **धेहि**-धारण कीजिए। इसी दृष्टिकोण के **अन्नम्**=भोज्य अन्न को, **रेतः**-अन्न से उत्पन्न इस वीर्य को, **लोहितम्**=रुधिर को तथा **उदरम्**-उदर को—उदरोपलक्षित समस्त शरीर को (**धेहि**=) धारण कीजिए। २. **तानि**=उन चक्षु, श्रोत्र आदि को **कल्पत्**-सामर्थ्ययुक्त करता हुआ **ब्रह्मचारी**-वीर्यरक्षक युवक **समुद्रे**-ज्ञान के समुद्र आचार्य के गर्भ में **तपः तप्यमानः**-तप भी करता हुआ **सलिलस्य पृष्ठे**=ज्ञान-जल के पृष्ठ पर **अतिष्ठत्**-स्थिर होता है। इस ज्ञान-जल में **स्नातः**-स्नान करके शुद्ध बना हुआ **सः**-वह ब्रह्मचारी **बभ्रुः**=वीर्य का धारण करनेवाला **पिंगलः**-तेजस्विता से पिंगल वर्णवाला **पृथिव्याम्**=इस पृथिवी पर **बहु रोचते**-बहुत ही चमकता है।

भावार्थ—ब्रह्मचारी अपने में 'चक्षु, श्रोत्र, यश, अन्न, रेत, लोहित व उदर' को धारण करता हुआ आचार्य के गर्भ में तपस्यापूर्वक स्थित होता है। यह ज्ञान-जल में स्नान करके, वीर्यरक्षण से तेजस्वी बना हुआ इस पृथिवी पर खूब ही चमकता है।

यह निष्पाप जीवनवाला ब्रह्मचारी शान्ति का विस्तार करनेवाला 'शन्ताति' होता हुआ अगले सूक्त में निष्पापता के लिए प्रार्थना करता है—

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'अग्नि—सूर्य' द्वारा 'पाप व कष्ट से मोचन'

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १॥

१. 'पाप' क्या है? एक वस्तु का अयथायोग 'ग़लत प्रयोग' ही पाप है और इस पाप के कारण ही कष्ट होते हैं। प्रस्तुत मन्त्रों में प्रयुक्त 'अंहस्' शब्द के दोनों ही अर्थ हैं (i) Sin (पाप) (ii) Trouble, anxiety, care, distress (कष्ट)। यदि हम अग्नि आदि देवों का ठीक ज्ञान प्राप्त करके इनका उपयुक्त प्रयोग करेंगे तो पाप व कष्ट से ऊपर उठ पाएँगे, अतः कहते हैं कि **अग्निं ब्रूमः**-अग्नि का व्यक्त (स्पष्ट) प्रतिपादन करते हैं—उसका ठीक ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार **वनस्पतीन् ओषधीः उत वीरुधः**-वनस्पतियों, ओषधियों व लताओं का ठीक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं। २. **इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यम्**-शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले (इन्द्र), ज्ञान के स्वामी (बृहस्पति), सबको कर्मों में प्रेरित करनेवाले (सुवति कर्मणि—सूर्यः) प्रभु को हम स्तुत करते हैं और स्वयं भी जितेन्द्रिय, ज्ञानी व क्रियाशील बनने का प्रयास करते हैं। **ते**=वे सब अग्नि आदि देव **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पाप व कष्ट से मुक्त करें।

भावार्थ—हम अग्नि आदि देवों का ठीक ज्ञान प्राप्त करते हुए उनकी सहायता से पापों व कष्टों से बचें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'वरुण—विवस्वान्' द्वारा पाप व कष्ट से मोचन

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ २॥

१. **राजानम्**-शासन करनेवाले व दीप्त, **वरुणम्**-पाप का निवारण करनेवाले, **मित्रम्**-सबके प्रति स्नेहवाले, **विष्णुम्** व्यापक **अथो**-और **भगम्**-ऐश्वर्यशाली प्रभु को **ब्रूमः**=कहते हैं। इन नामों से प्रभु का स्मरण करते हुए ऐसा ही बनने का प्रयत्न करते हैं। २. **अंशम्**-धनों का संविभाग करनेवाले व **विवस्वन्तम्** विशिष्ट निवास को प्राप्त करानेवाले प्रभु को **ब्रूमः**-हम स्तुत करते हैं। हम भी धनों का संविभाग करते हुए सबके निवास का साधन बनते हैं। **ते**-वे 'राजा, वरुण, विवस्वान्' आदि सब देव **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पापों व कष्टों से मुक्त करें।

भावार्थ—हम 'राजा, वरुण, मित्र, विष्णु, भग, अंश व विवस्वान्' आदि नामों से क्रियात्मकरूप में प्रभुस्तवन करते हुए पाप व कष्ट से दूर हों।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'देव त्वष्टा' प्रभु द्वारा पापमोचन

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ३॥

१. **देवम्**-दान आदि गुणों से युक्त, **सवितारम्**-सबके प्रेरक, **धातारम्**-सबका धारण करनेवाले **उत**-और **पूषणम्**=सबके पोषक प्रभु का **ब्रूमः**-गुणगान करते हैं। **त्वष्टारम्** निर्माता व **अग्रियम्** सबसे प्रथम होनेवाले प्रभु का **ब्रूमः** स्तवन करते हैं। **ते** वे सब देव **नः** हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पापों व कष्टों से बचाएँ।

भावार्थ—हम 'देव, सविता, धाता, पूषा, त्वष्टा व अग्रिय' प्रभु का स्मरण करें। यह स्मरण हमें वैसा बनने की प्रेरणा देता हुआ पापों व कष्टों से बचाए।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'गन्धर्व व अर्यमा'

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ४॥

१. **गन्धर्व-अप्सरसः**-(गां धारयन्ति, अप्सु सरन्ति) वेदवाणी का धारण करनेवाले व प्रशस्त कर्मों में गतिवाले पुरुषों का **ब्रूमः**-हम स्तवन करते हैं। इसी प्रकार **अश्विना**-प्राणापान की साधना करनेवाले **ब्रह्मणस्पतिम्** ज्ञान के रक्षक पुरुषों का हम स्तवन करते हैं। **अयर्मा नाम यः देवः**=अर्यमा नामक जो देव है—शत्रुओं का नियमन करनेवाला जो देव है—**ते**-वे सब **नः** हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पापों व कष्टों से बचाएँ।

भावार्थ—हम 'वेदवाणी का धारण करनेवाले, यज्ञादि कर्मों को करनेवाले, प्राण साधना में प्रवृत्त, ज्ञान के स्वामी, व वासनारूप शत्रुओं का नियमन करनेवाले (अरीन् यच्छति)' बनें। यही पाप व कष्ट से बचने का मार्ग है।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अहोरात्रे—सूर्यचन्द्रमसौ

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा। विश्वानादित्यान्ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ५॥

१. **अहोरात्रे** दिन और रात्रि का लक्ष्य करके हम **इदं ब्रूमः**-इस स्तुतिवाक्य का उच्चारण

करते हैं। **सूर्याचन्द्रमसौ**-सूर्य और चन्द्रमा **उभौ**-दोनों का लक्ष्य करके स्तुतिवचन कहते हैं। इसी प्रकार **विश्वान्**-सब **आदित्यान्**-आदित्यों का स्तवन करते हैं। संक्रान्तिभेद से सूर्यों का भेद होकर ये '**धातार्य्यमामित्राख्या वरुणांशभगा विप्रवस्वदिन्द्रयुताः। पूषाह्वयपर्जन्यौ त्वष्टा विष्णुश्च भानवः प्रोक्ताः**' धाता, अर्यमा आदि बारह आदित्यों के गुणों का स्तवन करते हैं। **ते**-वे सब **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप व कष्ट से मुक्त करें।

भावार्थ—हम दिन व रात के चक्र में, सूर्य व चन्द्रमा की ज्योति में तथा आदित्यों की संक्रान्तियों में प्रभु-महिमा को देखते हुए पापवृत्ति से ऊपर उठें और कष्टों से बचें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वात—पर्जन्य

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

१. हम **वातम्**=वायु को **पर्जन्यम्**=मेघ को, **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष को **अथो**=और **दिशा**=दिशाओं को **ब्रूमः**=व्यक्तरूपेण प्रतिपादित करते हैं—इनके गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, **च**=और हम **सर्वाः आशाः ब्रूमः**=सब विदिशाओं—दिगन्तरालों का **ब्रूमः**=ज्ञान प्राप्त करते हैं। **ते**-वे वायु आदि सब देव **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पाप व कष्ट से मुक्त करे।

भावार्थ—हम 'वात, पर्जन्य, अन्तरिक्ष, दिशाओं तथा विदिशाओं' में प्रभु की महिमा को देखते हुए निष्पाप व सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अहोरात्र—उषा—सोम

मुञ्चन्तु मा शपथ्या ३ दहोरात्रे अथो उषाः।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

१. **अहोरात्रे**=दिन और रात **अथो**-तथा **उषाः**=उषाकाल **मा**=मुझे **शपथ्यात्**=आक्रोशजनित पाप से **मुञ्चन्तु**-मुक्त करें। मैं किसी भी समय पर निन्दा में प्रवृत्त में न होऊँ। यह **सोमः देवः**=दिव्य गुणयुक्त प्रकाशमय 'सोम', **यम्**-जिसको 'चन्द्रमा' **इति आहुः**=चन्द्रमा (=आह्लाद देनेवाला) इस नाम से कहते हैं, **मा मुञ्चतु**-मुझे आक्रोशजनित पाप से मुक्त करे। शीतल ज्योत्स्नावाले चन्द्र का स्मरण मुझे भी शीतल स्वभाववाला बनाए।

भावार्थ—'दिन, रात, उषा व चन्द्र' ये सब मुझे आक्रोशजनित पाप से मुक्त करे।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पशु-पक्षियों का अहिंसन

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान्पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

१. **पार्थिवाः**=पृथिवी पर विचरनेवाले, **दिव्याः**-आकाश में गतिवाले, **पशवः**-जो भी मनुष्येतर प्राणी हैं, **उत**-और ये **आरण्याः मृगाः**=वन्य हिरण, शार्दूल, सिंह आदि पशु हैं, तथा **शकुन्तान् पक्षिणः**=शक्तिशाली पक्षियों को **ब्रूमः**-हम स्तुत करते हैं—इनकी रचना व स्वभाव आदि का चिन्तन करते हैं। **ते**-वे सब **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप व कष्ट से मुक्त करें।

भावार्थ—पशु-पक्षियों की गतिविधियों में हम प्रभु-महिमा को देखते हुए इनके हिंसनरूप पाप से बचें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता **अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'भवशर्व, रुद्र, पशुपति'

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः॥ ९॥

१. **भवाशर्वौ**-भव और शर्व को—सुखों के उत्पादक व दुःखों के विनाशक (शृ) प्रभु को—लक्ष्य करके हम **इदम्** इस स्तुतिवचन को **ब्रूमः** कहते हैं। **रुद्रम्** दुष्टों को रुलानेवाले, **च** और **यः पशुपतिः** जो सब प्राणियों के रक्षक प्रभु हैं, उन्हें लक्ष्य करके हम इस स्तुतिवचन को कहते हैं। २. **एषाम्** इन 'भव, शर्व, रुद्र व पशुपति' की **याः इषूः संविद्म**-जिन प्रेरणाओं को हम जानते हैं, **ताः**-वे सब प्रेरणाएँ **नः** हमारे लिए **सदा**-सदा **शिवाः सन्तु**-कल्याणकारिणी हों।

भावार्थ—'भव' का स्मरण करते हुए हम भी सुखों का उत्पादन करनेवाले हों, 'शर्व' का स्मरण हमें दुःखदलन में प्रवृत्त करे। 'रुद्र' का स्मरण करते हुए हम दुष्टता का दलन करें और प्राणियों का रक्षण करते हुए हम 'पशुपति' के समान बनें। यही शिवमार्ग है।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १०॥

१. **दिवम्**-इस द्योतमान द्युलोक का हम **ब्रूमः** स्तवन करते हैं। द्युलोक में आश्रित **नक्षत्राणि**-नक्षत्रों को—जोकि पुण्यकृत् लोगों के धाम हैं (**सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणि**—तै० अ० ५.५.१.३), उनका स्तवन करते हैं। **भूमिम्** भूमि का **यक्षाणि**-भूमि पर स्थित पुण्यक्षेत्रों का (पूज्य स्थानों का), **पर्वतान्**-पर्वतों का गुणस्तवन करते हैं। २. **समुद्राः** समुद्रों, **नद्यः** नदियों व **वेशन्ताः**-जो अल्प सर (तालाब) हैं, उन सबका गुणस्तवन करते हैं। इन सबमें प्रभु की महिमा को देखते हैं। इसप्रकार **ते**-वे सब **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु** पाप व कष्ट से बचाएँ।

भावार्थ—द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, समुद्र, नदी आदि में सर्वत्र प्रभु महिमा का अवलोकन करते हुए हम पापों से बचें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सप्तर्षि—यमश्रेष्ठ पितर

सप्तर्षीन्वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्।
पितॄन्यमश्रेष्ठान्ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ११॥

१. **सप्तर्षीन्** सप्तर्षियों का लक्ष्य करके हम **इदं ब्रूमः**-इस स्तुतिवचन को कहते हैं। प्रभु ने 'दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखे व मुख' इन सप्तर्षियों का कितनी सुन्दरता से शरीर में स्थापन किया है। इन **देवीः अपः**-रोगों को जीतने की कामना करनेवाले रेतःकणरूप जलों का हम स्तवन करते हैं (दिव् विजिगीषायाम्)। **प्रजापतिम्**-प्रजाओं के रक्षक प्रभु का, **यमश्रेष्ठान् पितॄन्**-नियन्त्रण करनेवालों में श्रेष्ठ पितरों का **ब्रूमः**-हम स्तवन करते हैं, **ते**-वे सब **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप व कष्ट से बचाएँ।

भावार्थ—सप्तर्षियों व वीर्य का गुणस्तवन करते हुए हम उनका रक्षण करें। प्रभु का व पितरों का स्मरण करें। ये हमें पापों व कष्टों से बचाएँगे।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

त्रिलोकी के देव

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये। पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १२ ॥

१. **ये**=जो **दिविषदाः देवाः**=द्युलोक में स्थित होनेवाले देव हैं, **ये च**=और जो **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष में आसीन होनेवाले देव हैं, **ये**=जो **शक्राः**=शक्तिशाली देव **पृथिव्यां श्रिताः**=पृथिवी पर आश्रित हैं, **ते**=वे सब **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पापों व कष्टों से बचाएँ।

भावार्थ—सब देवों की अनुकूलता हमें निष्पाप व सुखी जीवनवाला बनाए।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आदित्य—रुद्र—वसु

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥

१. **आदित्याः**=सब गुणों का आदान करनेवाले, **रुद्राः**=रोगों को दूर भगानेवाले, **वसवः**=निवास को उत्तम बनानेवाले, **दिवि देवाः**=ज्ञान के प्रकाश में स्थित होनेवाले देव, **अथर्वाणः**=(अ थर्वतिः चरतिकर्मा) स्थिरवृत्तिवाले, **अंगिरसः**=अंग-प्रत्यंग में रसवाले **मनीषिणः**=बुद्धिमान् पुरुष, **ते**=वे सब **नः अंहसः मुञ्चन्तु**=हमें पापों व कष्टों से बचाएँ।

भावार्थ—हम आदित्य आदि की वृत्ति को अपनाते हुए कष्टों व पापों से ऊपर उठें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञ, यजुः, होत्रा

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥

१. **यज्ञं ब्रूमः**=अग्निष्टोम आदि यज्ञों का हम स्तवन करते हैं। **यजमानम्**=यज्ञशील पुरुष का स्तवन करते हैं, **ऋचः**=यज्ञ में विनियुक्त पादबद्ध मन्त्रों का, **सामानि**=प्रगीतमन्त्रों का, **भेषजा**=रोगशान्तिकर वामदेव्य आदि का **यजूंषि**=यजुर्मन्त्रों का तथा **होत्राः**=सोमयाग में 'होता मैत्रावरुणो ब्राह्मणाच्छंसी पोता नेष्टा अच्छावाक् अग्नीध्र' आदि वषट्कर्ताओं की क्रियाओं का **ब्रूमः**=हम स्तवन करते हैं। **ते**=वे सब **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**=पापों व कष्टों से बचाएँ।

भावार्थ—यज्ञों में प्रवृत्त हुए हुए हम पापों व कष्टों से दूर हों।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सोम, दर्भ, भंग, यव, सहस्'

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥

१. **वीरुधाम्**=लताओं के—विरोहणशील (विरुध्) व रोगों को रोकनेवाली (विरुद) ओषधियों के—**पञ्च**=पाँच **राज्यानि**=रोगों के निवारण के द्वारा प्रजा का रञ्जन करनेवाले राजा (वैद्य) से विनियुज्यमान पत्र-काण्ड-पुष्प-फल-मूलात्मक राज्यों का **ब्रूमः**=हम गुणस्तवन करते हैं। ओषधियों के पाँच राज्य **सोमश्रेष्ठानि**=सोम श्रेष्ठ हैं, अर्थात् इन ओषधियों में सोम सर्वश्रेष्ठ है। इसके बाद **दर्भः भंगः यवः सहः**=कुश, शण, यव व सहमाना हैं। दर्भ (दृ विदारणे) रोगों का विदारण करनेवाला है, भंग (भञ्जो आमर्दने) रोगों का आमर्दन कर देता है। (यु अमिश्रणे) रोगों को हमसे दूर करता है और सहस् (षह मर्षणे) रोगों को कुचल देता है। **ते**=वे सब **नः**=हमें **अंहसः**=कष्टों से **मुञ्चन्तु**=मुक्त करें।

भावार्थ—'सोम, दर्भ, भंग, यव, सहस्' आदि ओषधियों का ज्ञानपूर्वक प्रयोग करते हुए हम रोगों का समूल विनाश करते हैं।

ऋषिः—**शन्नातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

एकशतं मृत्यवः

अरायान्ब्रूमो रक्षांसि सर्पान्पुण्यजनान्पितॄन्।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १६॥

१. **अरायान्**-अदानवृत्तिवाले, **रक्षांसि** अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले मनुष्यों का हम **ब्रूमः** व्यक्तरूप से प्रतिपादन करते हैं—इनके जीवन का विचार करते हैं। जहाँ **सर्पान्**-कुटिल गतिवाले पुरुषों के जीवन को कहते हैं, वहाँ उनकी तुलना में **पुण्यजनान्** गुणी—शुभकर्म प्रवृत्त—लोगों का तथा **पितॄन्** रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त लोगों का भी स्तवन करते हैं। इस सब विचार से हम 'अराय, रक्षस् व सर्प' न बनकर 'पुण्यजन व पितर' बनने का संकल्प करते हैं। २. **एकशतम्**-एक अधिक सौ **मृत्यून्**-मृत्यु के कारणभूत रोगों का भी प्रतिपादन व विचार करते हैं। विचार करके उनके कारणभूत अपथ्यों को दूर करने के लिए यत्न करते हैं। **ते**-वे सब **नः** हमें **अंहसः**-कष्ट से व पाप से **मुञ्चन्तु**-पृथक् करें।

भावार्थ—हम शुभ व अशुभ प्रवृत्तिवाले लोगों के जीवनों की तुलना करते हुए शुभ प्रवृत्तिवाले बनने के लिए यत्नशील हों। रोगों के कारणों का विचार करके उन कारणों को दूर करके कष्टों से मुक्त हों।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋतुचर्या का पालन

ऋतून्ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्।
समाः संवत्सरान्मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १७॥

१. **ऋतून् ब्रूमः**-हम ऋतुओं का विचारपूर्वक प्रतिपादन करते हैं। **ऋतुपतीन्** ऋतुओं के पतियों (वसन्त के अधिपति 'वसुओं', ग्रीष्म के 'रुद्र', वर्षा के 'आदित्य', शरत् के 'ऋतु' तथा हेमन्तशिशिर के 'मरुतों') का स्तवन करते हैं। **आर्तवान्** इन ऋतुओं में होनेवाले पदार्थों का स्तवन करते हैं। **हायनान् समाः संवत्सरान्**-चान्द्र, सौर, सावन भेद से त्रिविध संवत्सरों का तथा **मासान्** मासों का विचार करते हैं। इनका विचार करते हुए हम ऋतुचर्या का ठीक से पालन करते हैं। **ते** वे सब **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु** कष्ट व पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—ऋतुचर्या का ठीक प्रकार पालन करते हुए हम कष्टों व पापों से ऊपर उठें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवों द्वारा रक्षण

एत देवा दक्षिणतः पश्चात्प्राञ्च उदेत।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वेदेवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १८॥

१. हे **देवाः**-दिव्य गुणों व दिव्य गुणयुक्त पुरुषो! आप **दक्षिणतः एत** दक्षिणदिशा से हमें प्राप्त होओ। इसी प्रकार **पश्चात्**-पश्चिम से **प्राञ्चः**-अग्रगतिवाले होते हुए **उत् एत** उत्कर्षेण हमें प्राप्त होओ। **पुरस्तात्**-पूर्व से तथा **उत्तरात्**-उत्तर से **शक्राः** शक्तिशाली **विश्वेदेवाः**-सब देव **समेत्य**-मिलकर—इकट्ठे प्राप्त होकर **ते**-वे सब **नः**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु** पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—हमें सब दिशाओं से दिव्य गुणों व दिव्य पुरुषों की प्राप्ति हो। उनके सम्पर्क में

हम अशुभ से बचते हुए सुखी जीवनवाले हों।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सत्यसन्ध—ऋतावृध्' देव

विश्वान्दे॒वानि॒दं ब्रू॑मः स॒त्यस॑न्धानृता॒वृधः॑।
विश्वा॑भि॒: पत्नी॑भिः स॒ह ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः॥ १९॥
सर्वा॑न्दे॒वानि॒दं ब्रू॑मः स॒त्यस॑न्धानृता॒वृधः॑।
सर्वा॑भि॒: पत्नी॑भिः स॒ह ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः॥ २०॥

१. **विश्वान् देवान्**-(विशन्ति) प्रजाओं में प्रवेश करनेवाले (विचरनेवाले) **देवान्**-सब आसुरभावों को जीतने की कामनावाले, **सत्यसंधान्**-सत्य के साथ मेलवाले व **ऋतावृधः**-ऋत का (समय पर सब कार्यों को करने की वृत्ति का) वर्धन करनेवाले पुरुषों का लक्ष्य करके हम **इदं ब्रूमः**=यह स्तुतिवचन कहते हैं। **ते**=वे सब देव **विश्वाभिः पत्नीभिः सह**-अपने अन्दर प्रविष्ट सब पालनशक्तियों के साथ **न**-हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप व कष्ट से मुक्त करें। २. **सर्वान्**-(whole) पूर्ण स्वस्थ **देवान्**=देवों को **इदं ब्रूमः**=लक्ष्य करके यह स्तुतिवचन कहते हैं, ये देव **सत्यसंधान्** सत्य प्रतिज्ञावाले व **ऋतावृधः**-ऋत का वर्धन करनेवाले हैं। **सर्वाभिः पत्नीभिः सह**-अपनी सब पालकशक्तियों के साथ **ते**=वे **नः**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप से मुक्त करें।

भावार्थ—हम सत्य के साथ मेलवाले व ऋत का पालन करनेवाले देव बनकर पापों व कष्टों से दूर होने का यत्न करें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भूत-भूतपति

भू॒तं ब्रू॑मो भूत॒पतिं॑ भू॒ताना॑मु॒त यो व॒शी। भू॒तानि॒ सर्वा॑ सं॒गत्य॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः॥ २१॥

१. **भूतम्**-लब्धसत्ताक (उत्पन्न) वस्तुमात्र को लक्ष्य करके हम **ब्रूमः**-स्तुतिवचन—उनके गुणों के प्रतिपादक वचनों को कहते हैं। **भूतपतिम्**=सब भूतों के रक्षक, **उत**-और **यः भूतानां वशी**=जो सब भूतों को वश में करनेवाला देव है, उसके स्तुतिवचनों को कहते हैं। **ते**=वे **सर्वा भूतानि**=सब भूत **संगत्य**=परस्पर संगत होकर, **न**=हमें **अंहसः मुञ्चन्तु**-पाप व कष्ट से मुक्त करें।

भावार्थ—हम भूतों (उत्पन्न पदार्थों) के गुणों को समझें। भूतपति प्रभु का स्मरण करें। इसप्रकार भूतपति के स्मरण के साथ भूतों का ठीक प्रयोग करते हुए कष्टों से बचें।

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दिशाएँ, ऋतुएँ व संवत्सर की दंष्ट्राएँ

या दे॒वीः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ ये दे॒वा द्वाद॑श॒र्तवः॑।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ ये दंष्ट्रा॒स्ते नः॑ सन्तु॒ सदा॑ शि॒वाः॥ २२॥

१. **याः**=जो **देवीः**=दिव्य-गुणों से युक्त **पञ्च**=(पचि विस्तारे) विस्तृत **प्रदिशः**-प्रकृष्ट दिशाएँ हैं और **ये**-जो **देवाः**-दिव्य गुणयुक्त **द्वादश ऋतवः**-(**'मधुश्च माधवश्च'**—तै० आ० १।४।१।४।१) दो-दो मासों से बनी हुई, अतएव छह होती हुई भी बारह मासोवाली ऋतुएँ हैं और **ये**=जो **संवत्सरस्य दंष्ट्रा**-आश्विन मास के अन्तिम आठ व कार्तिक मास के सारे दिन वर्ष रूप की यमदंष्ट्रा हैं (इन दिनों में रोग अधिक होते हैं, अतः इन्हें यमदंष्ट्रा कहा गया है), **ते**=वे सब **नः**-हमारे लिए **सदा**=सदा **शिवाः**=कल्याणकर **सन्तु**-हों।

भावार्थ—सब दिशाएँ, ऋतुएँ व वर्ष के यमदंष्ट्रा नामक काल भी हमारे लिए कल्याणकर हों

ऋषिः—**शन्तातिः** ॥ देवता—**अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भाऽनुष्टुप्** ॥

अमृतम् भेषजम्

यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम्।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत्तदापो दत्त भेषजम्॥ २३॥

१. **मातली** इन्द्र (जीवात्मा) के शरीर-रथ का सारथिरूप यह बुद्धि **रथक्रीतम्**-(रथे क्रीतं) शरीर-रथ में द्रव्यविनिमय से—(भोजन का विनिमय रस में, रस का रुधिर में, रुधिर का मांस में, मांस का मेदस् में, मेदस् का अस्थि में, अस्थि का मज्जा में व मज्जा का वीर्य में—इसप्रकार विनिमय द्वारा) प्राप्त **यत्**-जिस **अमृतम्**-निरोगता के देनेवाले **भेषजम्**-सब रोगों के औषधभूत वीर्य को **वेद**-प्राप्त करता है **इन्द्रः**-जितेन्द्रिय पुरुष **तत्** उस वीर्य को **अप्सु प्रावेशयत्** शरीरस्थ रुधिररूप जलों में प्रविष्ट कराता है। जितेन्द्रियता द्वारा वीर्य की ऊर्ध्वगति करता हुआ इन्हें रुधिर में व्याप्त कर देता है, **तत्**-अतः **आपः** हे रुधिररूप जलो! आप हमारे लिए **भेषजम् दत्त**=यह औषध दो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित वीर्य सब रोगों का औषध बनता है। बुद्धि ही इसके महत्त्व को समझकर जितेन्द्रिय पुरुष को इसके रक्षण के लिए प्रेरित करती है।

यह वीर्यरक्षण करनेवाला 'इन्द्र' संसार की समाप्ति पर भी बचे रहनेवाले उस 'उच्छिष्ट' प्रभु का स्मरण करता है। प्रभुस्मरण द्वारा अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी करता हुआ 'अथर्वा' (अथ अर्वाङ्) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है—

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उच्छिष्टे नामरूपम्

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्॥ १॥

१. **उच्छिष्टे**-सम्पूर्ण संसार के प्रलीन हो जाने पर भी अपने 'सत्' स्वरूप में बचे रहनेवाले प्रभु में ही **नामरूपम्**-नामधेयात्मक शब्द प्रपञ्च और उससे निरूपणीय सम्पूर्ण अर्थ प्रपञ्च आहित है, **च** और **उच्छिष्टे**-उस उच्छिष्ट प्रभु में ही **लोकः आहितः**-यह सब लोक आस्थित है। २. **उच्छिष्टे** उस उच्छिष्टे प्रभु में ही **इन्द्रः च अग्निः च** द्युलोकाधिपति इन्द्र (सूर्य) और पृथिवी का अधिपति अग्नि दोनों आहित हैं। उसके ही **अन्तः**-अन्दर **विश्वं समाहितम्**-सम्पूर्ण जगत् सम्यक् स्थापित है।

भावार्थ—सब नामरूप, सब लोक, सूर्य, अग्नि व सम्पूर्ण विश्व उच्छिष्ट प्रभु में ही आहित है।

ऋषिः— **अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः॥ २॥

१. **द्यावापृथिवी**-ये द्युलोक व पृथिवीलोक **उच्छिष्टे**-प्रलय के बाद भी शिष्यमाण प्रभु में आश्रय करके रह रहे हैं। **विश्वं भूतम्**-इन द्यावापृथिवी के सब प्राणी **समाहितम्**=उच्छिष्ट

में ही सम्यक् आहित हैं। **आपः**=ये जल व **समुद्रः**-समुद्र **चन्द्रमाः**-चन्द्र तथा **वातः**-वायु ये सब **उच्छिष्टे आहितः**=उस उच्छिष्यमाण प्रभु में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—उच्छिष्ट प्रभु में ही द्यावापृथिवी, सब भूत, जल, समुद्र, चन्द्र व वायु आहित हैं।

ऋषिः— **अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सन् उच्छिष्टे असन् च

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि॥ ३॥

१. **सन्**=सत्तावाला प्रतीत होता हुआ यह कार्यजगत् **असन् च**=अव्यक्त सा—अभावात्मक-सा लगता हुआ कारणजगत् **उभौ**=दोनों **उच्छिष्टे**=उस उच्छिष्ट में आश्रित हैं। **मृत्युः**=प्रपञ्च का मारक मृत्यु, **वाजः**-प्रपञ्च का बल, **प्रजापतिः** अन्नोत्पादन द्वारा प्रजा का रक्षक मेघ, **लौक्याः**=लोकसम्बन्धिनी सब प्रजाएँ **उच्छिष्टे**=उस उच्छिष्यमाण प्रभु में ही **आयत्ताः**-अधीन होकर रह रहे हैं। **व्रः च**=सबको अपने में आवृत करनेवाला आकाश **द्रः च**=और गतिरूप काल तथा **मयि श्रीः**=मुझमें जो श्री है, वह सब उस उच्छिष्ट प्रभु में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—'सन्, असन्, मृत्यु, वाज, प्रजापति, लौक्य, व्र, द्र, और श्री सब प्रभु में आश्रित है।'

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

उच्छिष्टे देवताः श्रिताः

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः॥ ४॥

१. **दृढः**-दृढ़ अंगोंवाला—प्रवृद्ध शरीरवाला देव, **दृंहस्थिरः**=दृंहण के द्वारा स्थिर किया हुआ यह लोक, **न्यः**=(नेतारस्तत्रत्याः प्राणिनः—सा०) उन लोकों में रहनेवाले प्राणी, **ब्रह्म**=बढ़ा हुआ जगत् का कारण अव्यक्तात्मक (महत्तत्त्व), **दश विश्वसृजः**-नौ प्राणों के साथ मुख्य प्राण—ये प्राण तो विश्व के स्रष्टा हैं—तथा **देवताः**=सब देव **उच्छिष्टे**=उस उच्छिष्ट प्रभु में इसप्रकार **श्रिताः**-आश्रित हैं, **इव**=जैसे **नाभिम्**=नाभि को **सर्वतः**-सब ओर से आवेष्टित करके **चक्रम्**=रथचक्र स्थित होता है।

भावार्थ—सब दृढ़ देव, दृढ़ता से स्थिर किया हुआ लोक, उन लोकों में गति करनेवाले प्राणी, दश प्राण व सब देव प्रभु में इसप्रकार आश्रित हैं, जैसे नाभि में रथचक्र।

ऋषिः— **अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऋक्-साम-यजुः उच्छिष्टे

ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि॥ ५॥

१. **ऋक्**=यज्ञ में याज्यानुवाक्यादि रूप से विनियुक्त पादबद्ध मन्त्र, **साम**-प्रगीतमन्त्र, **यजुः**-प्रश्लिष्ट पठित अनुष्ठेयार्थप्रकाशक मन्त्र, **उच्छिष्टे**=उच्छिष्यमाण ब्रह्म में समाश्रित हैं। **उद्गीथः**=उद्गाता से गीयमान सामभाग, **प्रस्तुतम्**=प्रस्तोता से गीयमान प्रस्तावाख्य भाग, **स्तुतम्**=स्तवनकर्म, **हिंकारः**=गायन के प्रारम्भ में प्रयुज्यमान 'हिं' शब्द, **साम्नः**=सब सामों के साथ सम्बद्ध **स्वरः**='क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिमन्द्र' रूप सप्तविध स्वर **च**=और **मेडिः**-ऋगक्षरों व गानविशेष का संसर्जक स्तोमविशेष—ये सब उच्छिष्ट में आश्रित हैं। **तत्**-ये सब यज्ञसमृद्धि के लिए **मयि**=मुझमें भी हों।

भावार्थ—'ऋक्, साम, यजुः' रूप त्रिविध मन्त्र, उद्गीथादि पाँचों सामभक्तियाँ उस उच्छिष्ट में ही आश्रित हैं। यज्ञसमृद्धि के लिए मैं भी इनको धारण करूँ।

ऋषिः – **अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः —**पुरउष्णिग्बार्हतपराऽनुष्टुप्** ॥

उच्छिष्टे यज्ञस्यांगानि

ऐन्द्राग्रं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्।

उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि॥ ६ ॥

१. **ऐन्द्राग्रम्** इन्द्र और अग्नि का स्तवन करनेवाला प्रातःसवन में प्रयुज्यमान साम, **पावमानम्** तीनों सवनों में प्रयुज्यमान पवमान सोमदेवतावाला साम, **महानाम्नीः**-'विदा मघवन् विदा गातुं०' इत्यादि ऋचाएँ 'इन ऋचाओं में गाया जानेवाला शाक्वर साम', **महाव्रतम्** 'राजन्, गायत्र, बृहद्, रथन्तर, भद्र' नामक पाँच सामों से क्रियमाण स्तोत्र। इसप्रकार 'ऐन्द्राग्र०' आदि **यज्ञस्य अंगानि** यज्ञ के सब अंग **उच्छिष्टे अन्तः**-उच्छिष्यमाण प्रभु के अन्दर इसप्रकार रह रहे हैं, **इव**-जैसी **मातरि गर्भः** माता के गर्भ में सन्तान होती है। ब्रह्म में आश्रित होते हुए ये सब यज्ञ के अंश यज्ञ को समृद्ध करते हैं।

भावार्थ—ऐन्द्राग्र, पावमान, महानाम्नी व महाव्रत आदि यज्ञ के सब अङ्ग उच्छिष्ट प्रभु में ही आश्रित हैं।

ऋषिः— **अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः —**अनुष्टुप्** ॥

उच्छिष्ट में 'राजसूय' आदि यज्ञों की स्थिति

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः। अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

१. **राजसूयम्** (राजा सूयते प्रेर्यते यस्मिन् कर्मणि) जिस कर्म में राजा को कर्त्तव्यों की प्रेरणा दी जाती है, **वाजपेयम्**-(वाजः अन्नं द्रवीकृत्य पेयं यस्मिन् कर्मणि) जिसमें यह प्रेरणा दी जाती है कि 'अन्न को खूब चबाकर खाना है' वह कर्म, **अग्निष्टोमः**-जहाँ अग्रणी प्रभु का स्तवन होता है **तत् अध्वरः** वह हिंसा के लवलेश से शून्य यज्ञ, **अर्काश्वमेधौ**:-जिसमें 'अग्नि' नाम से प्रभु की अर्चना होती है, वह उपासना यज्ञ (अर्क) तथा जहाँ 'आदित्य' नाम से उस सर्वव्यापक प्रभु का उपासन होता है, वह अश्वमेध यज्ञ (अश् व्याप्तौ, अश्नुते, मेधृ संगमे)—ये सब यज्ञ उस **उच्छिष्टे**:-उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं तथा **जीवबर्हिः** जिसमें जीव का सब प्रकार से वर्धन होता है (बृहि वृद्धौ) वह **मदिन्तमः**-अत्यन्त आनन्द देनेवाला यज्ञात्मक कर्म भी उस प्रभु में आश्रित है।

भावार्थ—'राजसूय' आदि सब यज्ञ उच्छिष्यमाण प्रभु में ही आश्रित हैं।

ऋषिः— **अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः —**अनुष्टुप्** ॥

अग्न्याधेय आदि का आश्रय 'उच्छिष्ट'

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह।

उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥

१. **अग्न्याधेयम्**-अग्निहोत्र में किया जानेवाला अग्नि के आधान का कर्म, **दीक्षा**-व्रतग्रहण, **कामप्रः** सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले काम्य कर्म, **छन्दसा सह**-गायत्री आदि छन्दों व अथर्ववेद के साथ **उत्सन्नाः यज्ञाः** जिन यज्ञों द्वारा जीव ऊपर उठकर (उत् सन्न) ब्रह्म में स्थित होते हैं, वे यज्ञ तथा **सत्राणि**-(सीदन्ति एषु बहवो यजमानाः) बहुकर्तृक सोमयाग—ये सब **उच्छिष्टे अधि** उच्छिष्यमाण प्रभु में **समाहिताः**-समाश्रित हैं।

भावार्थ—'अग्न्याधेय, दीक्षा, कामप्र, छन्दस्, उत्सन्न, यज्ञ व सत्रों' के आश्रय वे उच्छिष्ट प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्निहोत्र आदि का आश्रय 'प्रभु'

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः॥ ९॥

१. **अग्निहोत्रं च**=सायं-प्रातः किया जानेवाला अग्निहोत्र (**सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात्**—आप० श्रौ० ६। १५। १४) **श्रद्धा च**=यज्ञानुष्ठान विषयक आस्तिक्य बुद्धि, **वषट्कारः**=याज्यान्त में हविःप्रदान के लिए प्रयुज्यमान 'वषट्' शब्द, **व्रतम्**=असत्य न बोलने का व्रत, **तपः**=मन व इन्द्रियों का एकाग्रतारूप तप **दक्षिणा**=यज्ञ की समाप्ति पर ऋत्विज् के लिए देय द्रव्य, **इष्टम्**=यज्ञ, **पूर्तं च**=वापी, कूप आदि निर्माण, लोकपूरक कर्मों का अनुष्ठान—ये सब **उच्छिष्टे अधि समाहिताः**=उच्छिष्ट प्रभु में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—अग्निहोत्र आदि सब कर्मों का आधार प्रभु हैं।

ऋषिः— **अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

एकरात्र—द्विरात्र

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्य ःः।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया॥ १०॥

१. **एकरात्रः**=(एकं रात्रिं व्याप्य वर्त्तमानः सोमयागः 'एकरात्र') एक रात्रि तक चलनेवाला सोमयाग, **द्विरात्रः**=दो रात्रियों तक चलनेवाला सोमयाग, **सद्यः क्रीः**=(सद्यः तदानीमेव क्रीयते सोमोऽस्मिन् इति) जिसमें उसी समय सोम का क्रय होता है, वह सोमयाग तथा **प्रक्रीः**=प्रकर्षेण सोमक्रयवाला सोमयाग **उक्थ्यः**=अग्निष्टोम के बाद होनेवाले तीन स्तुतशस्त्र जिसमें उक्थसंज्ञक हैं, वह सोमयाग—ये सब **उच्छिष्टे**=उच्छिष्यमाण प्रभु में **ओतम्**=आबद्ध हैं और **निहितम्**=निक्षिप्त (रक्खे हुए) हैं। इसप्रकार **यज्ञस्य**=यज्ञ-सम्बन्धी **अणूनि**=सूक्ष्मरूप **विद्यया**=ज्ञान के साथ उस ब्रह्म में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—'एकरात्र, द्विरात्र' आदि सोमयागों का उपदेश प्रभु ही देते हैं। सब यज्ञों के सूक्ष्मरूप ज्ञान के साथ प्रभु में ही आश्रित हैं।

ऋषिः— **अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चतूरात्र—पंचरात्र

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः॥ ११॥

१. **चतूरात्रः**=चार रात्रियों में सम्पन्न होनेवाला सोमयाग, **पञ्चरात्रः षड्रात्रः सप्तरात्रः च**=पाँच, छह और सात रात्रियों में सम्पन्न होनेवाले सोमयाग तथा **उभयः सह**=(उभौ चतूरात्रलक्षणौ अवयवौ अस्य सः अष्टरात्रः उभयः) दो चतूरात्रों से बना हुआ अष्टरात्र और इसी प्रकार दशरात्र, द्वादशरात्र व चतुर्दशरात्र सोमयाग, **षोडशी**=सोलह स्तोत्रोंवाला षोडशी सोमयाग—ये सब यज्ञ **उच्छिष्टात् जज्ञिरे**=उच्छिष्यमाण प्रभु से उत्पन्न हुए। ये सब **यज्ञाः**=यज्ञ वे हैं **ये**=जोकि **अमृते हिताः**=अमृतलक्षणफल-जनन में समर्थ हैं।

भावार्थ—अमृत प्राप्त करानेवाले चतूरात्र आदि सब सोमयाग प्रभु द्वारा ही प्रादुर्भूत किये

गये हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विश्वजित् अभिजित्

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि॥ १२॥

१. **प्रतीहारः**-उद्गीथ भक्ति के बाद होनेवाली प्रतिहर्ता से उच्यमान साम की चौथी भक्ति 'प्रतिहार' **निधनम्** जिस भाग से साम की समाप्ति होती है वह 'निधन' (इसे सब उद्गाताओं को बोलना होता है), **यः विश्वजित् च अभिजित् च**-विश्वजित् व अभिजित् नामवाले सोमयाग, **साह्न अतिरात्रौ**-एक दिन में समाप्यमान सवनत्रयात्मक सोमयाग तथा रात्रि को लाँघकर होनेवाला उनतीस स्तुतशस्त्रोंवाला सोमयाग तथा **द्वादशाहः अपि**=(द्वादशान्त अह्नां समाहारो यस्मिन्) बारह दिनोंवाला क्रतु भी—ये सब **उच्छिष्टे** उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं, **तत्** ये सब अनुक्रान्त (क्रमशः कथित) यज्ञसमूह **मयि**-मुझमें हों, मैं इन यज्ञों को करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—'प्रतीहार, निधन, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह' आदि यज्ञ प्रभु में आश्रित हैं। मैं भी इन्हें करनेवाला बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सूनृता—संनतिः

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः॥ १३॥

१. **सूनृता**-प्रिय सत्यवाणी, **संनतिः**-(फलस्य नतिः) फल प्राप्ति (सत्यप्रतिष्ठायां सर्वक्रिया फलाश्रयत्वम्)—सत्य के होने पर क्रियाफल प्राप्ति, **क्षेमः**-उपनत फल का रक्षण, **स्वधा**-धारक अन्न, **ऊर्जा**-प्राणस्थापक बलदायी अन्न, **अमृतम्**-अमृतत्व प्रापक पीयूष (अभिनव पय-ताज़ा दूध) **सहः**-पराभिभवनक्षम बल—ये **सर्वे** सब **कामाः**-काम्यमान फलविशेष **उच्छिष्टे**-उच्छिष्यमाण प्रभु में ही हैं। २. ये सब **प्रत्यञ्चः**-आत्माभिमुख प्राप्त होते हुए **कामेन तातृपः** काम्यमान अभिलषित फल से यजमान को प्रीणित करते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष को 'सूनृता, संनति, क्षेम, स्वधा, ऊर्जा, अमृत, सहः' ये सब कमनीय पदार्थ तृप्ति देनेवाले होते हैं।

ऋषिः— **अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भूमीः—समुद्राः—दिवः

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि॥ १४॥

१. **नव भूमीः**-नौ खण्डोंवाले ये पृथिवीलोक अथवा स्तुति के योग्य ये पृथिवीलोक, **समुद्राः**- अन्तरिक्षस्थ लोक तथा **दिवः** उपरितन द्युलोक **उच्छिष्टे अधिश्रिताः**-उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं। यह **सूर्यः**-सूर्य तथा **अहोरात्रे अपि**-दिन रात भी **उच्छिष्टे**-उस उच्छिष्ट प्रभु में ही **आभाति**-चमक रहे हैं। **तत्** वह प्रभु **मयि**-मुझमें भी दीप्त हो—मैं भी प्रभु के प्रकाश से प्रकाशवाला बनूँ।

भावार्थ—पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक सभी प्रभु में आश्रित हैं। सूर्य व दिन रात प्रभु में ही दीप्त होते हैं। प्रभु के आधार में मैं भी दीप्तिवाला बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सब यज्ञों का धारक 'प्रभु'

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता॥ १५॥

१. **उपहव्यम्**=उपहव्य नामक सोमयाग को, **विषूवन्तम्**=गवामयन नामक संवत्सर सत्र के मासषट्कात्मक पूर्वोत्तर पक्षों के मध्य में एकविंशस्तोमक अनुष्ठेय सोमयाग को, **ये च**=और जो अन्य **यज्ञाः गुहा हिताः**=यज्ञ गुहा में निगूढ हैं—अज्ञायमान-से हैं—विद्वानों की बुद्धिरूप गुहा में हैं—उन सब यज्ञों को यह **उच्छिष्टः**=उच्छिष्यमाण परमात्मा **बिभर्ति**=धारण करता है। जो प्रभु **विश्वस्य भर्ताः**=सम्पूर्ण जगत् का भरण करनेवाले हैं, **जनितुः पिता**=जनयिता पिताओं के भी पिता हैं। सब जनयिता प्रभु से उत्पन्न होकर ही जनक बनते हैं।

भावार्थ—प्रभु ही सब यज्ञों के धारक हैं। प्रभु विश्व के भर्त्ता हैं, जनकों के भी जनक हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

असोः 'पौत्रः—पितामह'

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्य ः॥ १६॥

१. **उच्छिष्टः**=वह उच्छिष्यमाण प्रभु **जनितुः पिता**=जनकों का भी जनक (रक्षक) है। वह **पितामहः**=जनकों का भी जनक प्रभु **असोः**=प्राण का **पौत्रम्**=(पौत्रम् अस्य अस्ति इति) पोतृकर्म करनेवाला—पवित्रता का सम्पादक है। हमारे जीवनों को पवित्र करनेवाले वे प्रभु ही हैं। २. **सः**=वह **विश्वस्य ईशानः**=इस सम्पूर्ण संसार के ऐश्वर्यवाले प्रभु **वृषा**=सब सुखों का सेचन करनेवाले हैं। **अतिघ्न्यः**=हनन से ऊपर उठे हुए—अहननीय होते हुए वे प्रभु **भूम्याम् क्षियति**=इस पृथिवी पर निवास करते हैं—सब प्राणिशरीरों में वे प्रभु स्थित हो रहे हैं (अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर। —गीता ८।४)।

भावार्थ—प्रभु जनकों के जनक हैं। ये पितामाह प्रभु प्राणों को पवित्र करनेवाले हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के ईशान वे प्रभु सब सुखों के दाता हैं। अहननीय होते हुए वे सब प्राणिशरीरों में निवास कर रहे हैं।

सूचना—यहाँ 'पौत्रः पितामहः' शब्दों में विरोधाभास अलंकार द्रष्टव्य है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ऋतं-सत्यम्

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं ॒ लक्ष्मीर्बलं बले॥ १७॥

१. **ऋतम्**=मन से यथार्थ संकल्पन, **सत्यम्**=वाणी से यथार्थभाषण, **तपः**=तप (व्रतोपवासादि नियम) **राष्ट्रम्**=राज्य **श्रमः**=श्रम—शब्दादि विषयोपभोग से उपरति (विश्रान्ति), **च धर्मः**=और धर्म, **च**=तथा **कर्म**=यज्ञादि कर्म, **भूतम्**=उत्पन्न जगत् **भविष्यत्**=उत्पत्स्यमान जगत् **वीर्यम्**=सामर्थ्य, **लक्ष्मी**=सर्ववस्तु सम्पत्ति, **बलम्**=शरीरगत सामर्थ्य—ये सब **बले**=उस बलवान् **उच्छिष्टे**=उच्छिष्यमाण प्रभु में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—'ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रम, कर्म, भूत, भविष्यत्, वीर्य, लक्ष्मी व बल' ये सब बलवान् प्रभु में ही आश्रित हैं।

ऋषिः - **अथर्वा** ॥ देवता -**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

समृद्धि ओज

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः॥ १८॥

१. **समृद्धिः**=इष्टफल की अभिवृद्धि, **ओजः** शरीरबल, **आकूतिः**-इष्टफलविषयक संकल्प **क्षत्रम्** क्षात्र तेज, **राष्ट्रम्** राज्य, **षट् उर्व्यः** छह उर्वियाँ—द्युलोक, पृथिवीलोक, दिन, रात, जल, ओषधियाँ (आप० श्रौ० १।२।१) **संवत्सरः** द्वादशमासात्मक काल, **इडा**-वेदवाणी, **प्रैषाः** प्रेरकमन्त्र, **ग्रहाः**-गृह्यमाण सोम, **हविः**-चरु, पुरोडाशादि हविर्द्रव्य—ये सब **उच्छिष्टे अधि** उच्छिष्यमाण प्रभु के आधार से हैं।

भावार्थ—समृद्धि, ओज व आकृति आदि का आधार वे प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञाः होत्राः

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः॥ १९॥

१. **चतुर्होतारः**-चतुर्होतृसंज्ञक मन्त्र ('चित्ति स्रुक्'—तै० आ० ३।१ ५), **आप्रियः**-होता जिन मन्त्रों से यज्ञ करता है (आप्रीभिः आप्नुवन् तद् आप्रीणाम् आप्रित्वम्—तै० ब्रा० २।२।८।२) **चातुर्मास्यानि**-चार मासों में क्रियमाण 'वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुनासीरीय' नामक चार पर्व, **नीविदः** स्तोतव्य गुणप्रकर्ष निवेदनपरक मन्त्र, **यज्ञाः**-याग, **होत्राः**=होतृ प्रमुख सात वषट्कर्त्ता, **पशुबन्धाः** 'अग्नीषोमीय सवनीय अनुबन्धी' रूप सोमांगभूत पशुयाग, **इष्टयः**-अंगभूत यज्ञ, **तत्**-वह सब चतुर्होतृप्रभृतिक मन्त्र, यज्ञ व यज्ञांग **उच्छिष्टे** उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित होकर रह रहे हैं।

भावार्थ—सब मन्त्रों, यज्ञों व यज्ञांगों के आधार प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अर्धमासाः च मासाः च

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही॥ २०॥

१. **अर्धमासाः** पन्द्रह दिनों से बने पक्ष, **मासाः**-चैत्र आदि महीने, **आर्तवाः** ऋतुसम्बन्धी पदार्थ, **ऋतुभिः सह**-वसन्त आदि ऋतुओं के साथ **उच्छिष्टे** उस उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं। **घोषिणीः आपः**-वे घोषयुक्त जल, **स्तनयित्नुः**-गर्जना करता हुआ मेघ तथा **मही श्रुतिः** यह महनीय (आदरणीय) वेदवाणी उस प्रभु में ही आश्रित हैं।

भावार्थ—'सब काल, उस उस काल में होनेवाले पदार्थ, जल, मेघ व वेदवाणी' ये सब उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं।

ऋषिः— **अथर्वा** ॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्** ॥

शर्कराः सिकताः

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता॥ २१॥

१. **शर्करा**:-क्षुद्र पाषाणविशेष (बजरी), **सिकता**:-बालुका (रेत), **अश्मान**:-पत्थर, **ओषधय**:=व्रीहि-यव आदि ओषधियाँ, **वीरुध**: लताएँ, **तृणा**:-गौ आदि से उपभोग्य घास, **अभ्राणि**-मेघ, **विद्युत**:=बिजली, **वर्षम्**=वृष्टि—ये सब **उच्छिष्टे**=उच्छिष्यमाण प्रभु में **संश्रिता**=समवस्थित हुए-हुए **श्रिता**-प्रभु के आश्रय में रह रहे हैं।

भावार्थ—'शर्करा, सिकता, पाषाण' आदि सब पदार्थों के आधार प्रभु ही हैं।

सूचना—'संश्रिता' का अर्थ अन्य 'स्वाश्रय समवेत पदार्थ' भी लिया जा सकता है। ये सब भी उस उच्छिष्ट में **श्रिता**=आश्रित हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती**॥

प्राप्ति, समाप्ति, व्याप्ति

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता॥ २२॥

१. **राद्धिः**-फल की सिद्धि, **प्राप्तिः**=प्रेप्सित फल की प्राप्ति, **समाप्तिः**=कर्म की पूर्णता, **व्याप्तिः**-नाना मनोरथों के अनुरूप फलों की प्राप्ति, **महः**=तेज, **एधतुः**-वृद्धि, **अत्याप्तिः**-आशातीत प्राप्ति, **भूतिः**-समृद्धि जोकि **आहिता**-चारों ओर सूर्य आदि देवों में स्थापित है, अथवा जो **निहिता**=पर्वतकन्दराओं व भूगर्भ में सुरक्षित रक्खी है—वह सब **उच्छिष्टे हिता**=उच्छिष्यमाण प्रभु में स्थापित है।

भावार्थ—सब 'सिद्धि, प्राप्ति, वृद्धि व भूति' के आधार प्रभु ही हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**उच्छिष्टः, अध्यात्मम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सर्वाधार प्रभु

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २३॥
ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २४॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २५॥
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २६॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥ २७॥

१. **यत् च**-जो भी प्राणिसमूह **प्राणेन प्राणति**=प्राणवायु से प्राणन-व्यापार करता है अथवा घ्राणेन्द्रिय से गन्धों को सूँघता है, **यत् च**=और जो प्राणिसमूह **चक्षुषा पश्यति**=आँख से रूप को देखता है **सर्वे**=वे सब प्राणी **उच्छिष्टात् जज्ञिरे**=उच्छिष्यमाण प्रभु से प्रादुर्भूत हुए हैं तथा **दिवि**-द्युलोक में स्थित **दिविश्रितः**=प्रकाशमय सूर्य के आकर्षण में श्रित **देवाः**=(दिव् गतौ) गतिमय लोक उस उच्छिष्ट प्रभु में ही आश्रित हैं। २. **ऋचः**-पादबद्ध मन्त्र, **सामानि**-गीतिविशिष्टमन्त्र, **छन्दांसि**=गायत्री आदि सातों छन्द, **यजुषा सह**=यज्ञ प्रतिपादक मन्त्रों के साथ **पुराणम्**=सृष्टि निर्माण व प्रलयादि के प्रतिपादक मन्त्र ये सब उच्छिष्यमाण प्रभु में आश्रित हैं।

२. **प्राणापानौ** प्राण और अपान, **चक्षुः श्रोत्रम्**-आँख व कान, **अक्षितिः च**=क्षय का अभाव **या च क्षितिः** और जो क्षय है, वह सब उच्छिष्ट प्रभु में आश्रित है। इसी प्रकार **आनन्दाः** विषयोपभोगजनित सुख, **मोदाः** विषयदर्शनजन्य हर्ष, **प्रमुदाः**-प्रकृष्ट विषयलाभजन्य हर्ष, **ये च**=और जो **अभीमोदमुदः** (अभिमोदेन मोदयन्ति) संनिहित सुख हेतु पदार्थ हैं—ये सब उस प्रभु में आश्रित हैं। ३. **देवाः**-आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति नामक तेतीस देव, **पितरः**=पालनात्मक कर्मों में प्रवृत्त रक्षक वर्ग, **मनुष्याः** प्रभुमननपूर्वक धनार्जन करनेवाले मनुष्य, **गन्धर्व-अप्सरसः च ये**-जो वेदवाणी का धारण (गां धारयन्ति) और यज्ञादि कर्मों को करनेवाले (अप्सु सरन्ति) लोग हैं—ये सब उस प्रभु के आधार से ही रह रहे हैं।

भावार्थ—प्राणिमात्र व पदार्थमात्र के आधार वे प्रभु ही हैं, सब ज्ञानों व आनन्दों का आधार भी वही हैं।

सर्वाधार प्रभु का स्मरण करता हुआ यह साधक अपने कर्त्तव्यमार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ता है। कर्त्तव्य कर्म करने को ही अपना मार्ग समझनेवाला यह 'कौरुपथि' ही अगले सूक्त का ऋषि है। इस सूक्त का देवता 'अध्यात्मम्' है, इसमें शरीर की रचना आदि का काव्यमय वर्णन है—

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मन्यु का जाया आवहन

यन्मन्युर्जायामावहत्संकल्पस्य गृहादधि।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्॥ १॥

१. स्वमहिम प्रतिष्ठ परब्रह्म की और सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मायाशक्ति (प्रकृति) की कर्मपरिपाक जनित सम्बन्ध के कारण उत्पन्न होनेवाली जो परमेश्वर सम्बन्धी सिसृक्षावस्था है, उसी का यहाँ लौकिक विवाह के रूप में निरूपण करते हैं। **यत्**-जब **मन्युः** (मन्यते सर्वं जानाति-सा०) सर्वज्ञ प्रभु **जायाम् आवहत्**-(जायते अस्यां सर्वं जगत्—सा०) सिसृक्षावस्थापन्न पारमेश्वरी मायाशक्ति को भार्यारूप से स्वीकार करनेवाला हुआ तो वह इस जाया को **संकल्पस्य गृहात् अधि**-(सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय—तै० आ० ८।६।१) संकल्प के घर से लाया। संकल्प से ही इस सिसृक्षावस्थारूप जाया की उत्पत्ति हुई। २. उस समय उस जाया के आवहन के प्रसंग में **के जन्याः असन्**-कौन जायापक्ष के लोग थे। **के वराः**-कौन वरपक्ष के लोग थे। **च** और **कः**-कौन **ज्येष्ठवरः अभवत्**-विवाह करनेवाला प्रधानभूत वर हुआ।

भावार्थ—प्रभु के संकल्प से सिसृक्षावस्था की उत्पत्ति हुई। इसके होने पर ही प्रभु ने इस विविध सृष्टि को प्रादुर्भूत किया।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तप + कर्म

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्य१र्णवे।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरो१ऽभवत्॥ २॥

१. उस सृष्टि के समय **महति अर्णवे अन्तः**-महान् प्रकृति के अणु-समुद्र में **तपः च कर्म च एव आस्ताम्**=प्रभु के स्रष्टव्य पर्यालोचनात्मक तप की (यस्य ज्ञानमयं तपः) तथा प्राणियों से अनुष्ठित फलोन्मुख परिपक्व कर्म की स्थिति हुई। उस समय तप और कर्म ही उपकरणरूप से अवस्थित थे। २. **ते**-वे तप और व्यक्तियों से अनुष्ठित बहुल कर्म ही **जन्याः आसन्**-विवाहप्रवृत्त

बन्धुजन थे। **ते**=वे ही **वराः**-वरण करनेवाले बाराती थे। **ब्रह्म**=सिसृक्षावस्थावाला जगत् कारणभूत ब्रह्म ही **ज्येष्ठवरः अभवत्**=ज्येष्ठवर था।

भावार्थ—सृष्टि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण उपकरण दो ही हैं (१) प्रभु का स्रष्टव्य पर्यालोचनात्मक तप तथा (२) प्राणियों का फलोन्मुख परिपक्व कर्म।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवप्रत्यक्ष से महद् ब्रह्म का ज्ञान

दश॑ साकमजायन्त देवा देवेभ्यः॑ पुरा।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत्॥ ३॥

१. **पुरा**-सृष्टि के प्रारम्भ में **देवेभ्यः**=सूर्य आदि ब्रह्माण्ड के देवों से **दश देवाः**-शरीरस्थ चक्षु आदि दस देव **साकम् अजायन्त**=साथ-साथ प्रादुर्भूत हुए (सूर्यः चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्, अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्०) २. **यः**=जो भी उपासक **वै**-निश्चय से **तान्**=उन देवों को **प्रत्यक्षं विद्यात्**-अपरोक्षरूप में जानता है—अर्थात् इन देवों का साक्षात्कार करता है, **सः वै**-वही निश्चय से **अद्य**-अब **महद् वदेत्**=देशकालकृत परिच्छेदरहित ब्रह्म को प्रतिपादित (उपदिष्ट) करता है। उसे इन देवों में प्रभु की महिमा दीखती है। यह महिमा उसे प्रभु का आभास प्राप्त कराती है।

भावार्थ—शरीर में ब्रह्माण्ड के सूर्य आदि देवों से चक्षु आदि देव उत्पन्न होते हैं। इन देवों को जाननेवाला ही प्रभु की महिमा को देखनेवाला बनता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दश देव

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षि॑तिश्च क्षिति॑श्च या।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकू॑तिमावहन्॥ ४॥

१. **प्राणापानौ**=प्राण और अपान, **चक्षुः श्रोत्रम्**=आँख और कान, **अक्षितिः च**=अक्षीयमाण ज्ञानशक्ति (यह आत्मस्वरूपत्वेन नित्य है), **या च क्षितिः**=और जो निवासहेतुभूता क्रियाशक्ति है (क्षि निवासगत्योः), **व्यानोदानौ**=अन्न रस को सब नाड़ियों में (विविधं अनिति) विविधरूप से प्रेरित करनेवाला व्यान तथा उद्गारादि व्यापार को (ऊर्ध्वं अनिति) करनेवाला उदान, **वाङ्-मनः**=वाणी तथा मन **ते**=वे प्राणापान आदि दस देव **आकूतिम्**-पुरुषकृत संकल्प को **आवहन्**-आभिमुख्येन प्राप्त कराते हैं। पुरुष के अभिमत अर्थ को सिद्ध करनेवाले ये ही दस हैं।

भावार्थ—शरीर में स्थित प्राणापान आदि दस देव हमारे सब अभिमत अर्थों को सिद्ध करते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कर्मरूप सृष्टि का मूलकारण

अजाता आसन्नृतवोऽथो॑ धाता बृहस्पतिः। इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपा॑सत॥ ५॥
तपश्चैवास्तां कर्म॑ चान्तर्म॑हत्य॒ र्णवे। तपो॑ ह जज्ञे कर्म॑णस्तत्ते ज्येष्ठमुपा॑सत॥ ६॥

१. **ऋतवः**=वसन्त आदि ऋतुएँ उस सृष्टि के समय में अभी **अजाताः आसन्**-उत्पन्न न हुई थीं। **अथो**=और **धाता**-सबका धारण करनेवाला 'सूर्य' **बृहस्पतिः**-(बृहन् चासौ पतिः) वृद्धि का कारणभूत रक्षक 'वायु' भी न था। **इन्द्र-अग्नी**=मेघ (विद्युत्) व अग्नि भी न थे। **अश्विना**-दिन व रात (नि० १।२।१) भी न थे। ये 'धाता, बृहस्पति, इन्द्राग्नी, अश्विना' नामक

छह ऋतुओं के अधिपति भी न थे। **ते** वे सब धाता आदि अपनी उत्पत्ति के लिए **कम्**-किस **ज्येष्ठम्** सबसे बड़े कारणभूत जनयिता की **उपासत**-उपासना करते थे? २. उत्तर देते हुए कहते हैं कि **महति अर्णवे अन्तः**-महान् प्रकृति के अणु समुद्र में **तपः च एव** जगत् स्रष्टा ईश्वर का स्रष्टव्य पर्यालोचनात्मक तप ही और **कर्म च** कल्पान्तर में प्राणियों से अनुष्ठित फलोन्मुख परिपक्व कर्म ही **आस्ताम्**-थे। २. वस्तुतः **तप**-प्रभु का पर्यालोचनात्मक तप भी **ह**-निश्चय से **कर्मणः** कल्पान्तर में प्राणियों से किये हुए कर्म से ही **जज्ञे**-प्रादुर्भूत हुआ। यदि प्राणियों के कर्म न होते तो स्वमहिम प्रतिष्ठ असंग व उदासीन प्रभु सृष्ट्युन्मुख होते ही नहीं और तब यह स्रष्टव्य पर्यालोचनात्मक तप भी न होता। एवं तप भी कर्म से पैदा हुआ, अतः **ते**-वे धाता आदि **तत्** उस कर्म की ही **ज्येष्ठम्** वृद्धतम सृष्टि के कारण के रूप में **उपासते**-उपासना करते हैं। कर्म को ही मूलकारण जानते हैं।

भावार्थ—सृष्टि के प्रारम्भ में अभी न ऋतुएँ थी न इनके अधिपति थे। वे अधिपति समझते हैं कि तप व कर्म से सृष्टि होती है। तप भी तो कर्म से होता है, अतः मूल कारण कर्म ही है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पुराणवित्

येत आसीद्भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्॥ ७॥

१. **इतः** इस पुरोवर्तिनी भूमि से **पूर्वा** पूर्वभाविनी—अतीतकल्पस्थ, **या भूमिः आसीत्** जो भूमि थी, **याम्**=जिस पूर्वा भूमि को **अद्धातयः**-(अद्धा प्रत्यक्षम् अतन्ति व्याप्नुवन्ति) तपः प्रभाव से प्राप्त ज्ञानवाले अतीत व अनागत के ज्ञाता महर्षि **इत्** ही **विदुः** जानते हैं। **ताम्** उस अतीतकल्पस्था भूमि को **यः वै**-जो निश्चय से **नामथा**-(नामप्रकारेण—सा०) उसमें जो जो वस्तु हैं, उन्हें नाम के साथ **विद्यात्** जानता है, **सः** वह **पुराणवित्** पुरातन अर्थ का जाननेवाला विद्वान् ही **मन्येत्** इस सारी वर्त्तमान भूमि को भी जान सकता है।

भावार्थ—सृष्टि की रचना को पूरा पूरा समझना कठिन ही है। समाधि से सर्वज्ञता को प्राप्त करनेवाले विरल पुरुष ही इसे जान पाते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

इन्द्र-से-इन्द्र, सोम-से-सोम

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताजायत॥ ८॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत॥ ९॥

१. **इन्द्र**-इन्द्र (मेघ व विद्युत्) **कुतः अजायत**-किससे प्रादुर्भूत हुआ? **सोमः** (षू प्रेरणे) यह प्रेरक वायु **कुतः**-कहाँ से उत्पन्न हो गई? **अग्निः कुतः**-(अजायत) अग्नि कहाँ से उत्पन्न हो गई। **त्वष्टा** सब जीवों के शरीर का निर्माण करनेवाला पृथिवीतत्त्व **कुतः**-कहाँ से **समभवत्** हुआ, **धाता**=धारण करनेवाला वह सूर्य **कुतः अजायत**-कहाँ से हो गया? २. **इन्द्रात्**-पूर्वकल्प में जिस रूप में इन्द्र था उस इन्द्र से **इन्द्रः**-इदानीन्तन इन्द्र **अजायत**-प्रादुर्भूत हुआ। इसी प्रकार **सोमात् सोमः**=पूर्वकल्प के सोम से, यह इस कल्प का सोम हुआ। **अग्नेः अग्निः**-पूर्वकल्प के अग्नितत्त्व ने इस कल्प का अग्नितत्त्व हुआ। **ह**-निश्चय से **त्वष्टुः**=पूर्वकल्प

के पृथिवी तत्त्व से **त्वष्टा जज्ञे**=यह त्वष्टा—पृथिवी तत्त्व प्रादुर्भूत हुआ। **धातुः धाता अजायत**=पूर्वकल्प के धाता से इस कल्प का धाता हो गया।

भावार्थ—जैसे पूर्वकल्प में सृष्टि की रचना हुई थी ठीक उसी प्रकार इस कल्प में भी सृष्टि रचना हुई। (पूर्व—पूर्वसृष्ट्यनुसारेणैव इदानीन्तना अपि इन्द्रादयो देवाः सृष्टाः। '**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**'—सा०)

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवेभ्यः देवाः

ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते॥ १०॥

१. **पुराः** प्रारम्भ में **ये**=जो **ते**=वे **दश देवाः**=चक्षु आदि दस देव **देवेभ्यः**=सूर्य आदि देवों से **जाताः आसन्**=प्रादुर्भूत हुए (सूर्यः चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्) **पुत्रेभ्यः**=अपने पुत्र चक्षु आदि के लिए **लोकं दत्त्वा**=लोक—स्थान देकर **ते**=वे देव **कस्मिन् लोके आसते**=किस लोक में आसीन होते हैं?

भावार्थ—जिज्ञासु प्रश्न करता है कि इन्द्रियों का व उनके अधिष्ठातृदेवों का निवासाश्रय कौन-सा है?

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कं लोकमनु प्राविशत्

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत्।
शरीरं कृत्वा पादवत्कं लोकमनु प्राविशत्॥ ११॥

१. **यदा**-जब सृष्टिकाल में **केशान्**=शिरोरुहों को **अस्थि स्नाव मांसं मज्जानम्**=शरीरोपादानभूत हड्डियों, अस्थिसंधिबन्धन की साधनभूत शिराओं, मांस, अस्थ्यन्तर्गत रस (मज्जा) को स्रष्टा ने **समभरत्**=एकत्र संभृत किया। संभृत हुए-हुए केश आदि द्वारा **शरीरम्**=शरीर को **पादवत् कृत्वा**-हस्तपाद आदि अंगोपांगसहित करके **कं लोकम् अनुप्राविशत्** किस अन्य लोक में अनुप्रविष्ट हुआ? वस्तुतः उसी पुरुष शरीर में ही आत्मभावेन उसने प्रवेश किया।

भावार्थ—इस शरीर में वह स्रष्टा केश आदि का आभरण करके इसी में अनुप्रविष्ट होता है। ('**तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्**'—तै० आ० ८।६.१ '**अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि**'—छा० उ० ६।३।२)।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

किसने? किससे?

कुतः केशान्कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत्।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत्॥ १२॥

१. **केशान्**-केशों को **कुतः आभरत्**=किस मूल उपादानकारण से बनाकर रक्खा? **स्नाव कुतः**-स्नायुओं को किस पदार्थ से बनाया? **अस्थीनि कुतः**=हड्डियों को किस उपादान से बनाया? **अंगा**=अन्य अंगों को **पर्वा**=पर्वों को **मांसम्**=मांस को **मज्जानम्**=अस्थिरस को **कुतः आभरत्**-किस उपादान से आभृत किया? तथा **कः (आभरत्)**=किसने इन सबका आभरण किया?

भावार्थ—किसने ये सब केश आदि पदार्थ बनाये? किस पदार्थ से बनाये?

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

संसिचो नाम ते देवाः

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ १३॥

१. **ये देवाः** मन्त्र १० में कहे गये ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियात्मक जो दश देव हैं अथवा अधिष्ठातृसहित प्राणापानादि हैं, वे **संभारन्**=(संभ्रियन्ते इति) केश आदि को **समभरन्**-एक स्थान पर संभृत करनेवाले हुए। **ते देवाः संसिचः नाम**-(सम् सिञ्चन्ति) वे देव सब संभारों को एकत्र करके बन्धक रस से बाँधते हैं, इसी से वे 'संसिच्' नामवाले हैं—वे संसेचन समर्थ संधायक हैं। २. वे **देवाः** देव **मर्त्यम्** इस मरणधर्मा **सर्वम्** सम्पूर्ण शरीर को **संसिच्य**=रुधिर से आर्द्र करके **पुरुषम् आविशन्**-पुरुषाकृति करके इसमें प्रविष्ट हुए।

भावार्थ—जब तक शरीर में प्राणों का निवास है तब तक ही प्राणाधिष्ठित शरीर सब व्यवहारों को करने में समर्थ होता है, अतः प्राणदेव ही पृथिव्यादि पंचभूतात्माओं से उत्पन्न केश अस्थ्यादि धातुमय पुरुष शरीर को प्रविष्ट करके रह रहे हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कः ऋषिः ?

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम्।
पृष्ठीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत्समदधादृषिः॥ १४॥

१. **ऊरू**-जाँघों को, **अष्ठीवन्तौ**-जानुओं को, **शिरः**=सिर को, **पादौ**-पाँवों को, **हस्तौ**-हाथों को **अथो मुखम्**-और मुख को **पृष्ठीः**-पार्श्वास्थियों—पसलियों को, **बर्जह्ये**-हंसली की हड्डियों को, **पार्श्वे**-छाती की पसलियों को **तत्**-उस सब ढाँचे को **कः ऋषिः**-किस सर्वद्रष्टा विवेकी ने **समदधात्**=परस्पर जोड़ा।

भावार्थ—ऊरू आदि अवयवों को कौन तत्त्वद्रष्टा संहित करनेवाला है?

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

महती संधा

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत्सन्धा समदधान्मही॥ १५॥

१. **शिरः**-मूर्धा को, **हस्तौ**-हाथों को, **अथो मुखम्** और मुख को, **जिह्वाम्**-जिह्वा को, **ग्रीवाः च** गर्दन के मोहरों को, **च कीकसाः** और अन्य अस्थियों को **त्वचा प्रावृत्य**-चर्म से आच्छादन करके **सर्वं तत्** उस सब अंगसमूह को **मही सन्धा**-महनीय प्रभु की सन्धानशक्ति (संधानकर्त्री देवता) **समदधात्**-संहित, परस्पर संश्लिष्ट, स्वस्वव्यापारक्षम करनेवाली हुई।

भावार्थ—प्रभु की संधानशक्ति ने सब अंग-प्रत्यंगों को त्वचा से आवृत करके परस्पर संश्लिष्ट कर दिया।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कः वर्णम् आभरत्?

यत्तच्छरीरमशयत्सन्धया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन्वर्णमाभरत्॥ १६॥

१. **यत्**-जो **संधया संहितम्**-प्रभु की संधानशक्ति से संहित हुआ हुआ **महत् शरीरं अशयत्**-यह महनीय शरीर शेते (वर्तते)-यहाँ ब्रह्माण्ड में निवास करता है, **अस्मिन्** इस शरीर में **कः**=किस देव ने **वर्णम्**=उस वर्ण को **आभरत्**=भरा **येन**=जिससे कि **इदम्**=यह शरीर **अद्य रोचते**=आज दीप्त हो रहा है।

भावार्थ—सन्धानशक्ति से संहित अवयवोंवाले इस शरीर में कौन देव कृष्ण-गौर आदि वर्णों को भर देता है?

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वर्ण को भरनेवाली 'ईशा'

सर्वे॑ दे॒वा उपा॑शिक्ष॒न्तद॑जानाद्व॒धूः स॒ती।
ई॒शा व॒शस्य॒ या जा॒या सास्मि॒न्वर्ण॒माभ॑रत्॥ १७॥

१. **सर्वे देवाः**-इन्द्रादि सब देवों ने **उपाशिक्षन्**-समीप होकर शक्त होना चाहा। **वधूः सती**=परमेश्वर से जिसका विवाह हुआ है, उस आद्या चिद्रूपिणी शक्ति ने **तत् अजानात्**-देवो से किये गये उस संकल्प को जाना। ऐतरेयोपनिषद् में यही भाव इन शब्दों में कहा गया है— **'ता एनमब्रुवन् आयतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठता अन्नमदामेति'**। २. तब **या**-यह जो **वशस्य**=सम्पूर्ण संसार को वश में करनेवाले ईश की **जाया**-पत्नी के रूप में **ईशा**=ईशाना नियन्त्री मायाशक्ति है, **सा**=उस पारमेश्वरी शक्ति ने ही **अस्मिन्**-इस षाट्कौशिक छह तहों में लिपटे हुए शरीर में **वर्णम् आभरत्**=गौर कृष्णादि वर्ण प्राप्त कराया।

भावार्थ—प्रभु ही देवों के एकत्रनिवास के लिए इस षाट्कौशिक शरीर को बनाते हैं। वे ही अपनी शक्ति से इसमें गौर-कृष्ण आदि वर्णों को भरते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उत्तरः त्वष्टा

य॒दा त्वष्टा॒ व्यतृ॑णत्पि॒ता त्वष्टु॒र्य उत्त॑रः।
गृ॒हं कृ॒त्वा मर्त्यं॑ दे॒वाः पुरु॑ष॒मावि॑शन्॥ १८॥

१. **यदा**-जब **त्वष्टुः**-कर्मों के द्वारा अपने शरीर आदि का निर्माण करनेवाले जीव का **यः पिता**-जो प्रभुरूप पिता है, उन्हीं **उत्तरः त्वष्टा**-सर्वोत्कृष्ट निर्माता प्रभु ने **व्यतृणत्**-इस शरीर में इन्द्रियरूप छिद्रों को बनाया तब **देवाः**=सूर्य आदि देव **मर्त्यं पुरुषम्**-इस मरणधर्मा पुरुषशरीर को **गृहं कृत्वा**-घर बनाकर **आविशन्**=प्रविष्ट हो गये। **'सूर्यः चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्०'** सूर्य चक्षु बनकर आँखों में, वायु प्राण बनकर नासिका में, अग्नि वाणी बनकर मुख में, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में ऐसे ही अन्य देव अन्य अन्य स्थानों में प्रविष्ट हो गये।

भावार्थ—जीव के कर्मानुसार शरीर बनता है, अतः जीव तो इसका 'त्वष्टा' है ही, परन्तु कर्मानुसार इन योनियों में प्राप्त करानेवाला प्रभु 'उत्तर त्वष्टा' है। वह इन शरीरों में इन्द्रिय-द्वारों को बना देता है और देव उन स्थानों में आकर आसीन हो जाते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्वप्नः—पालित्यम्

स्वप्नो॒ वै त॒न्द्रीर्निर्ऋ॑तिः पा॒प्मानो॒ नाम॑ दे॒वताः॑।
ज॒रा खाल॑त्यं॒ पालि॑त्यं॒ शरी॑र॒मनु॒ प्रावि॑शन्॥ १९॥

१. शरीर में इन्द्रियादि देवों के प्रवेश कर लेने पर तथा प्राणापानादि के प्रविष्ट हो जाने

पर शरीर सर्वव्यवहारक्षम हो गया। अब इसमें विविध विकारों का भी प्रारम्भ हुआ। **स्वप्नः**-स्वाप (निद्रा), **वै** निश्चय से **तन्द्रीः**-अलसता, **निर्ऋतिः**-दुर्गति, **पाप्मानः नाम देवताः**-'ब्रह्महत्या, सुरापान, स्तेय, परस्त्री संसर्ग, दुःसंग' आदि पापमय व्यवहार (दिव् व्यवहारे), **जरा**=बुढ़ापा, **खालत्यम्**-गञ्जापन, **पालित्यम्**=बालों की सफ़ेदी—ये सब विकार **शरीरम् अनुप्राविशन्** शरीर में अनुप्रविष्ट हो गये।

भावार्थ—शरीर में प्राणन व्यापार का प्रारम्भ हो जाने पर स्वप्न आदि विकारों का प्रवेश भी हो जाता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्तेयम्—सत्यम्

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन्॥ २०॥

१. **स्तेयम्**-चोरी की वृत्ति, **दुष्कृतम्**=दुष्कर्म, **वृजिनम्** पाप (crime दुष्कृत, पाप sin), **सत्यम्**-यथार्थकथन, **यज्ञः**-याग, **यशः** कीर्ति, **बृहत् बलं च** वृद्धि का कारणभूत बल, **क्षत्रम्**-क्षतों से त्राण करनेवाली शक्ति, **ओजः च**=और ओजस्विता—इन सबने **शरीरम् अनु प्राविशन्**-शरीर में प्रवेश किया।

भावार्थ—जहाँ शरीर में चोरी आदि भावों का उद्गम हुआ वहाँ सत्य आदि का भी प्रादुर्भाव हुआ।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भूति—अभूति—श्रद्धा-अश्रद्धा

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन्॥ २१॥
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन्॥ २२॥

१. **भूतिः च वै अभूतिः च**-समृद्धि और निश्चय से असमृद्धि, **रातयः**-दानवृत्तियाँ, **च याः** और जो **अरातयः** अदानवृत्तियाँ हैं, **क्षुधः च** भूख और **सर्वाः तृष्णाः च**-सब प्रकार की प्यास—ये **शरीरम् अनुप्राविशन्**-शरीर में प्रविष्ट हुईं। २. **निन्दाः च वै** निश्चय से निन्दा की वृत्तियाँ, **अनिन्दाः च**-अनिन्दा के भाव,'**यत् च हन्ति इति, न इति च**-और जो 'हाँ' या 'न' इसप्रकार इच्छा व अनिच्छा के भाव हैं, **च** तथा **श्रद्धा**-धर्मकार्यों में श्रद्धा, उसके लिए **दक्षिणा** पुरस्कार देने का विचार तथा **अश्रद्धा**-श्रद्धा का न होना—ये सब बातें **शरीरं अनुप्राविशत्**=शरीर में प्रविष्ट हो गईं।

भावार्थ—शरीर में समृद्धि असमृद्धि व श्रद्धा-अश्रद्धा आदि नाना भावों की स्थिति होती रहती है। ये ही बातें हमारे उत्थान व पतन का कारण बनती हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऋचः साम अथो यजुः

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्य ꣳम्।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः॥ २३॥

१. **विद्याः च वै**-निश्चय से आत्मज्ञान (पराविद्या) **अविद्याः च**-और अपरा विद्याएँ (प्रकृति-विज्ञान) **यत् च अन्यत् उपदेश्यम्**=और इनसे भिन्न जो भी उपदेश्य है; वह सब **ब्रह्म** ज्ञान **शरीरं प्राविशत्**=शरीर में प्रविष्ट हुआ। शरीर में **ऋचः**=ऋचाओं का **साम अथो यजुः**=साम और यजुः का भी प्रवेश हुआ 'विज्ञान, उपासना व कर्म' तीनों की शरीर में स्थिति हुई।

भावार्थ—हमारा शरीर विद्याओं, अविद्याओं, विज्ञान, उपासना व कर्म सभी का आधार बनता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

हसः नरिष्टा नृत्तानि

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन्॥ २४॥

१. **आनन्दाः**=विषयोपभोगजनित सुख, **मोदाः**=विषयदर्शनजन्य हर्ष, **प्रमुदः**=प्रकृष्ट विषयलाभजन्य हर्ष, **ये च**-और जो **अभीमोदमुदः**=(अभिमोदेन मोदयन्ति) संनिहित सुख हेतु पदार्थ, **हसः**-हास **नरिष्टा**=(नर इष्ट) मनुष्य के इच्छागोचर शब्द-स्पर्शादि विषय तथा **नृत्तानि**-नर्तन—ये सब आनन्द आदि **शरीरम् अनु प्राविशन्**-पुरुष के शरीर में प्रविष्ट हो गये।

भावार्थ—शरीरधारी जीव आनन्द आदि वृत्तियों का अनुभव करता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आयुजः—प्रयुजः—युजः

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः॥ २५॥

१. **आलापाः च**=आभाषण (सार्थक वचन), **प्रलापाः च**=निरर्थक वचन, **ये च**-और जो **अभीलापलपः**-उत्तर-प्रत्युत्तररूप कथन (जो प्रत्यक्ष में दूसरे की बातें सुनकर प्रत्युत्तर में बातें कही जाएँ), **आयुजः**=आयोजन, **प्रयुजः**-प्रयोग और **युजः**-योग (मेल-जोल)—आलाप आदि **सर्वे**=ये सब **शरीरं प्राविशन्**-शरीर में प्रविष्ट हुए।

भावार्थ—जीवित पुरुष आलाप आदि करता है तथा आयोजन आदि में प्रवृत्त होता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

चक्षुः श्रोत्रं वाङ् मनः

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते॥ २६॥

१. **प्राणापानौ**=प्राण और अपान, **चक्षुः श्रोत्रम्**=आँख व कान, **अक्षितिः च**=क्षय का अभाव, **या च क्षितिः**=और जो क्षय है, **व्यानोदानौ**=व्यानवायु व उदानवायु, **वाक् मनः**-वाणी और मन—**ते**=वे सब **शरीरेण**=इस शरीर के साथ **ईयन्ते**-गतिवाले होते हैं।

भावार्थ—प्राणापान आदि शरीर में प्रविष्ट होकर अपने-अपने व्यापारों में प्रवृत्त होते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आशिषः प्रशिषः, संशिषः विशिषः

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन्॥ २७॥

१. **आशिषः च** आशासन—इष्ट फल प्रार्थनाएँ (आशीर्वाद), **प्रशिषः च** प्रशासन (आज्ञाएँ) **संशिषः** संशासन (अनुज्ञाएँ), **याः च विशिषः** और जो विशेष आज्ञाएँ हैं, **चित्तानि** चित्त, मन, बुद्धि, अंहकार आदि तथा **सर्वे संकल्पाः** सब अन्तःकरण वृत्तियाँ **शरीरम् अनुप्राविशन्** शरीर में प्रविष्ट हुईं।

भावार्थ—जीवित शरीर में आशासन प्रशासन आदि के साथ नाना प्रकार की स्मृतियाँ व संकल्प होते रहते हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'बीभत्सु' शरीर (सुबद्ध-सुघटित)

आस्नेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन्॥ २८॥

१. **आस्नेयीः च** (अस्यते क्षिप्यते यत् नाडीषु) रुधिर में होनेवाले, **वास्तेयीः च** मूत्राधार में होनेवाले, **त्वरणाः**-शीघ्रगतिवाले, **याः च कृपणाः**-और जो कृश (पतले) व **स्थूलाः**-स्थूल (गाढ़े), **गुह्याः** (गुहायां भवाः) हृदयदेश में रहनेवाले या अदृश्य व **शुक्राः** वीर्यरूप में परिणत **अपः** जल हैं, **ताः**-वे सब जल **बीभत्सौ**-इस (बध बन्धने) सुबद्ध शरीर में **असादयन्** प्राप्त होते हैं—स्थित होते हैं।

भावार्थ—जल शरीर में विविधरूपों में स्थित होकर शरीर की सुबद्धता का साधन बनता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अस्थि=समिधा, रेतस्=आज्य

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्॥ २९॥

१. **अस्थि**-अस्थि (हड्डी) समूह को **समिधं कृत्वा** समिन्धनसाधन (शरीरपरिपाक का निमित्त) बनाकर **आपः**-शरीरस्थ जलों ने **तत् अष्ट**-उन आठ धातुओं को (रस, रुधिर, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा, वीर्य व ओज) **असादयन्** शरीर में स्थापित किया और **रेतः** वीर्य को ही **आज्यं कृत्वा** जीवन-यज्ञ का घृत बनाकर **देवाः**-इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेवों ने **पुरुषम् आविशन्**=पुरुष शरीर में प्रवेश किया।

भावार्थ—यह जीवन एक 'जरामर्य प्राणाग्निहोत्र' है। अस्थियाँ ही इसमें समिधाएँ हैं तथा वीर्य घृत है। अग्नि आदि देव इस शरीर में स्थित होकर इस जीवन यज्ञ को चला रहे हैं।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विराट् ब्रह्मणा सह

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः॥ ३०॥

१. **याः आपः** जो 'आस्नेयी वास्तेयी' आदि जल हैं (११।८।२८), **याः च देवताः** जो इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेव सूर्य आदि हैं, और **या विराट्** जो प्रभु की विशिष्ट शक्ति हैं, वे **ब्रह्मणा सह** ब्रह्म के साथ **शरीरं प्राविशत्**-शरीर में प्रविष्ट होती हैं। इस शरीर में **ब्रह्म (प्राविशत्)** प्रभु का प्रवेश होता है। वही सबका अन्तर्यामी है। **शरीरे अधि प्रजापतिः** इस शरीर में प्रजाओं का पालक (पुत्राद्युत्पादक) जीव रहता है। यह जीव के विविध भोगों का स्थान बनता है।

भावार्थ—शरीर में अपनी प्रकृतिरूप शक्ति के साथ ब्रह्म का भी निवास है—वे प्रभु तो

अन्तर्यामिरूप से यहाँ रह ही रहे हैं। शरीर में भोगों को भोगनेवाला जीव भी प्रजापति बनकर रह रहा है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये॥ ३१ ॥

१. **सूर्यः**-सूर्य **चक्षुः**=चक्षु इन्द्रिय को आत्मीयभाग के रूप में स्वीकार करता है। **वातः**-वायु **प्राणम्**=घ्राणेन्द्रिय को अपना भाग बनाता है (**आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्**—ऐ० आ० २।४।२) इसी प्रकार **पुरुषस्य**-इस पुरुष की अन्य इन्द्रियों को उनके अधिष्ठातृदेव **विभेजिरे**-विभागपूर्वक स्वीकार करते हैं। २. **अथ**=इसके बाद **इतरम्**-प्राण-इन्द्रिय आदि से व्यतिरिक्त **अस्य आत्मानम्**=इसके स्थूलशरीर को **देवाः**=सब देव **अग्नये प्रायच्छन्** अग्नि के लिए भागरूप से देते हैं। एवं, मरणानन्तर अग्नि से केवल यह स्थूलशरीर ही दग्ध किया जाता है।

भावार्थ—'ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाण्यपि। वायवः पञ्च बुद्धिश्च मनः सप्तदशं विदुः॥' यह सप्तदशात्मक लिंगशरीर मुक्तिपर्यन्त नष्ट न होकर उन-उन देवों का निवासस्थान बना रहता है। स्थूलशरीर बारम्बार अग्नि का भाग बनता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवमन्दिर

तस्माद्वै विद्वान्पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते। सर्वा ह्य॑स्मिन्देवता गावो गोष्ठइवासते॥ ३२ ॥

१. **तस्मात्**=उपर्युक्त कारण से—क्योंकि यहाँ भिन्न भिन्न इन्द्रियों में उस-उस देवता का निवास है **वै**-निश्चयपूर्वक **विद्वान्**-ज्ञानी पुरुष **इदं पुरुषम्**-इस पुरुष-शरीर को **ब्रह्म इति**-'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण (बृहि वृद्धौ) है' इस रूप में **मन्यते**-मानता है। **अस्मिन्**=इस शरीर में **हि**-निश्चय से **सर्वाः देवताः**-सब देव इसप्रकार **आसते**=आसीन होते हैं, **इव**=जैसेकि **गावः गोष्ठे**-गौएँ गोशाला में।

भावार्थ—सब देवों का निवासस्थान यह शरीर वस्तुतः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवमन्दिर है। इसे पवित्र बनाए रखना हमारा मौलिक कर्त्तव्य है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

त्रेधा

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते॥ ३३ ॥

१. शरीर का अभिमानी जीव शरीर व इन्द्रियों से पुण्य-पापात्मक कर्मों को करके उनके फलभोग के लिए त्रिविध गतिवाला होता है। **प्रथमेन प्रमारेण**=शरीरात्मक कर्म के क्षय से प्रथमभावी स्थूलशरीर के प्रमृत होने से वह त्यक्तशरीर जीवात्मा **त्रेधा** तीन प्रकार से **विष्वङ् विगच्छति**=नाना योनियों में आता है। **अदः**=विप्रकृष्ट (दूरस्थ) स्वर्गाख्य स्थान को **एकेन**-पुण्यकर्म से **गच्छति**-प्राप्त होता है, **अदः**-विप्रकृष्ट नरकाख्य स्थान को **एकेन गच्छति**-पापकर्म से प्राप्त होता है। तथा **इह**-इस भूलोक पर **एकेन**=पुण्य पापात्मक मिश्रित कर्म से **निषेवते**-नितरां सुखदुःखात्मक भोगों का सेवन करता है।

भावार्थ—('पुण्येन पुण्यलोकं नयति, पापेन पापं, उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्—प्रश्नो० ३.७) शरीर को छोड़ने पर पुण्य से स्वर्ग की, पाप से नरक की और पुण्य पाप की समता में मनुष्यलोक में जन्म मिलता है।

ऋषिः—**कौरुपथिः** ॥ देवता—**मन्युः, अध्यात्मम्** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अप्सु शरीरम्, शरीरे शवः

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम्।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते॥ ३४॥

१. **वृद्धासु**-बढ़े हुए **स्तीमासु**-गीला कर देनेवाले **अप्सु अन्तरा**=जलों के भीतर **शरीरम् हितम्**-यह शरीर रक्खा हुआ है। 'आपः रेतो भूत्वा०' जल ही रेतःकणों का रूप धारण करते हैं। इन्हीं से शरीर का निर्माण होता है। **तस्मिन् अधि अन्तरा**-उस शरीर के भीतर **शवः** यह गति देनेवाला आत्मतत्त्व है। **तस्मात्** गति देने के कारण ही **शवः**-यह गति का स्रोत बलवान् आत्मा **अधि उच्यते**=अधिष्ठातृरूपेण कहा जाता है।

भावार्थ—रेतःकणरूप जलों में शरीर की स्थिति है। शरीर में आत्मा की, आत्मा ही इसे गति देता है, अतः आत्मा इसका अधिष्ठाता कहा जाता है।

अगले सूक्त का ऋषि कांकायन है—कंक का अपत्य। कंक् गतौ to go धातु से कंक शब्द बना है। यह प्रजाओं का क्षतों से त्राण करनेवाले क्षत्रिय का वाचक है। यह क्षत्रिय 'अर्बुदि' है (अर्व to go, to kill) यह शत्रुओं के प्रति आक्रमण करता है और उनका संहार करता है—

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाविराट्शक्वरी** ॥

उदार प्रदर्शन से शत्रुओं का भयभीत हो जाना

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन्परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय॥ १॥

१. **ये बाहवः**-हमारे योद्धाओं की जो भुजाएँ हैं—आयुधग्राही हाथ हैं, **याः इषवः**-जो बाण हैं, **च**-और **धन्वनां वीर्याणि**-धनुर्धारियों के बल हैं, उन सबको तथा **असीन्**-तलवारों को, **परशून्** कुल्हाड़ों को, **आयुधम्**-शस्त्रों को **च**-और **हृदि**-हृदय में **यत्**-जो **चित्ताकूतम्**-चित्त से किया जाता हुआ शत्रुमारण संकल्प है, हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **त्वम्**-तू **तत् सर्वम्**-उन बाहु आदि को तथा सब आयुधों को **अमित्रेभ्यः** शत्रुओं के लिए **दृशे कुरु**-दिखलाने के लिए कर, जिससे कि इन युद्ध प्रकरणों को देखकर शत्रुओं के मनों में भीति का उद्भव हो, **च** तथा हे अर्बुदे! तू शत्रुओं के लिए **उदारान् प्रदर्शय**-विशाल आयोजनाओं को दिखला। इन विशाल आयोजनाओं को देखकर वे भयभीत हो उठें। उनमें युद्ध का उत्साह रहे ही नहीं।

भावार्थ—शत्रु हमारे योद्धाओं, अस्त्र शस्त्रों व विशाल आयोजनाओं को देखकर भयभीत हो जाए और युद्ध के उत्साह को छोड़ बैठे।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उत्थान व सन्नाह

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
सन्दृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे॥ २॥

१. हे **मित्राः**=(मित्र् प्रक्षेपणे) शत्रुओं का प्रक्षेपण करनेवाले **देवजनाः**-(दिव् विजिगीषायाम्) विजय की कामनावाले लोगो! **यूयं उत्तिष्ठत**-आप सब उठ खड़े होओ, **संनह्यध्वम्**=युद्ध के लिए संनद्ध हो जाओ। २. हे **अर्बुदे**=शत्रु का संहार करनेवाले सेनापते! **या नः मित्राणि**=जो भी हमारे मित्र शत्रुओं के विरोध में लड़ने के लिए आये हैं, वे **वः**=तुम सब देवजनों से (तृतीयार्थे षष्ठी) **संदृष्टाः**=सम्यक् निरीक्षित व **गुप्ताः सन्तु**-सुरक्षित हों।

भावार्थ—मित्र, देवजन उद्यत होकर और सम्यक् सन्नद्ध होकर हमारे शत्रुओं से युद्ध करें। हमारे मित्रों का वे रक्षण करें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**परोष्णिक्** ॥

आदान-संदान

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसन्दानाभ्याम्।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥

१. हे **अर्बुदे**=शत्रुसंहार करनेवाले सेनापते! तथा **न्यर्बुदे**=(मन्त्र ४ से उद्धृत) निश्चय से शत्रु के प्रति जानेवाले सेनापते! आप **उत्तिष्ठतम्**=उठ खड़े होओ, **आरभेथाम्**=(राभस्यं कार्योपक्रमः) शत्रुसंहार का कार्य प्रारम्भ करो॥ **आदान-संदानाभ्याम्**-(आदीयते अनेन, ग्रहणार्थं रज्जुयन्त्रम् आदानम्, सन्दीयते बध्यते अनेन सन्दानम्) आदान व सन्दानरूप रज्जुयन्त्रों से **अमित्राणाम्**=शत्रुओं की **सेनाः**=सेनाओं को **अभिधत्तम्**=बाँध डालो।

भावार्थ—मुख्य सेनापति (अर्बुदि) तथा अधीन सेनापति (न्यर्बुदि) मिलकर शत्रुसेनाओं को पाशरज्जु व बन्धनरज्जुओं से जकड़ डालें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**उष्णिग्बृहतीगर्भापरात्रिष्टुप्षट्पदाऽतिजगती** ॥

अर्बुदि + न्यर्बुदि

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्य र्बुदिः।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया॥ ४॥

१. **यः**-जो **अर्बुदिः नाम**='अर्बुदि' नामवाला मुख्य सेनापति है, वह **देवः**=शत्रुओं को जीतने की कामनावाला है (दिव् विजिगीषायाम्), **च**=और **न्युर्बुदि**=अधीनस्थ सेनापति **ईशानः**=शत्रुओं को जीतने में समर्थ है। ये अर्बुदि व न्यर्बुदि वे हैं **याभ्याम्**=जिनसे **अन्तरिक्षम्**-अन्तरिक्ष **च**=और **इयं मही पृथिवी**=यह महती पृथिवी **आवृतम्**=आवृत की गई है। वायुसेना द्वारा अन्तरिक्ष आवृत किया गया है, तथा नौसेना व स्थल (पदाति) सेना से यह पृथिवी आवृत की गई है। २. **ताभ्याम्**-उन द्यावापृथिवी को व्याप्त करके वर्त्तमान **इन्द्रमेदिभ्याम्**=राजा के प्रति पूर्ण स्नेहवाले अर्बुदि व न्यर्बुदि द्वारा **सेनया**=सेना के द्वारा **जितम्**=जीते हुए प्रदेश को **अहं अनु एमि**=मैं अनुकूलता से प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ—अर्बुदि व न्यर्बुदि शत्रुओं को जीतने की कामनावाले व शत्रुओं को जीतने में समर्थ हों। ये अन्तरिक्ष व पृथिवी को वायुसेना व स्थलसेना से आवृत करके शत्रुप्रदेश को जीतनेवाले बनें। वे प्रदेश हमारे लिए अनुकूलता से गति करने योग्य बनें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भोगेभिः परिवारय

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह। भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय॥ ५॥

१. हे **देवजन** शत्रु विजिगीषु पुरुष! **अर्बुदे** शत्रुसंहारक सेनापते! **त्वम्** तू **सेनया सह** सेना के साथ **उत्तिष्ठ** उठ खड़ा हो। **अमित्राणाम्** शत्रुओं की **सेनाम्**-सेना को **भञ्जन्**-आमर्दित करता हुआ—कुचलता हुआ **भोगेभिः परिवारय** (भोग An army in column) व्यूह में स्थित सेनाओं के द्वारा घेर ले।

भावार्थ—सेनापति शत्रुसेना को अपनी व्यूढ सेना के द्वारा घेर ले तथा उसका आमर्दन कर दे—उसे कुचल डाले।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सप्त जातान्'

सप्त जातान्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया॥ ६॥

१. हे **न्यर्बुदे**- निश्चय से शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले सेनानि! **त्वम्** तू **उदाराणाम्**- विशाल आयोजनाओं का **समीक्षयन्**-शत्रुओं के लिए सन्दर्शन कराता हुआ तथा **सप्त जातान्** ('स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च' राज्यांगानि प्रकृतयः) 'स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोश, राष्ट्र, दुर्ग तथा सैन्य' रूप सातों विकसित हुए-हुए राज्यांगों को दिखलाता हुआ, **तेभिः सर्वैः** उन सब राज्यांगों के साथ तथा **सेनया**-विशेषकर सेना के साथ **आज्ये हुते**-युद्धाग्नि में घृत पड़ जाने पर—युद्ध के भड़क उठने पर **उत्तिष्ठ** उठ खड़ा हो।

भावार्थ—युद्ध की परिस्थिति में राज्य के सभी अंग, विशेषतया सेना उसमें पूर्ण योग देनेवाली हो तभी विजय सम्भव होती है।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रतिघ्नाना—अश्रुमुखी

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु। विकेशी पुरुषे हुते रदिते अर्बुदे तव॥ ७॥

१. हे **अर्बुदे** शत्रुओं का संहार करनेवाले सेनापते! **तव रदिते** (रद विलेखने raid) तेरे द्वारा शत्रुओं का विलेखन—अवदारण होनेपर—तेरे द्वारा आक्रमण किये जाने पर **पुरुषे हते**-अपने पुरुषों के मारे जाने पर शत्रु स्त्रियाँ **प्रतिघ्नाना**-अपनी अपनी छाती को पीटती हुई, **अश्रुमुखी**-आँसुओं से व्याप्त मुखोंवाली **कृधुकर्णी च**-और कर्णाभरणों के त्याग से ह्रस्व कर्णोंवाली व मन्द श्रवणशक्तिवाली होती हुई **क्रोशतु**-रोदन करे।

भावार्थ—हमारे सेनापति द्वारा शत्रुसैन्य के पुरुषों के संहार होने पर शत्रु स्त्रियाँ छाती पीटती हुई आँसुओं से व्याप्त मुखोंवाली व मन्द श्रवणवाली चीखती चिल्लाती दीखें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

संकर्षन्ती—करूकरम्

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती। पतिं भ्रातरमात्स्वान्रदिते अर्बुदे तव॥ ८॥

१. हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **तव रदिते**-तेरे आक्रमण करने पर शत्रु स्त्री **करूकरं संकर्षन्ती**-अपने हाथ-पैर की हड्डियों को ('करू' शब्द करनेवाली हस्तपादादिगत संधिवाली अस्थियाँ-करूकर) मचकाती हुई (हड्डियों को खैंचती हुई), **मनसा पुत्रम् इच्छन्ती**-मन से पुत्र को चाहती हुई—युद्ध में गये हुए पुत्रादि की मृत्यु के भय से घबराकर उनके जीवन की कामना करती हुई—**पतिं भ्रातरम्**-पति व भाई को चाहती हुई, **आत् स्वान्**-और अन्य बन्धुओं को चाहती हुई (**क्रोशतु**) विलाप करे।

भावार्थ—युद्ध में अपने बन्धुओं की मृत्यु के भय से व्याकुल शत्रु-स्त्री, पुत्र, पति, भाई व बन्धुओं का विलाप करनेवाली हो।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

शत्रुशवों को खाकर पक्षी तृप्त हों

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन्रदिते अर्बुदे तव॥ ९॥

१. **अलिक्लवाः**-(अल सामर्थ्ये क्लव वैक्लव्ये) अपने बल से भय देनेवाले चील आदि **जाष्कमदाः**-(जसु हिंसायाम्) हिंसा में ही आनन्द लेनेवाले सारस आदि **गृध्राः**-गिद्ध, **श्येनाः** बाज, **पतत्रिणः**=अन्य मांसभक्षक पक्षी, **ध्वांक्षाः**=कौवे आदि **शकुनयः**-पक्षी, हे **अर्बुदे** सेनापते! **तव रदिते**-तेरा आक्रमण होने पर **अमित्रेषु**-शत्रुओं में **समीक्षयन्**-(व्यत्ययेन एकवचनम्—सा०) उनके मरण को देखते ही मरणानन्तर उन्हें खाने से **तृप्यन्तु**-तृप्त हों।

भावार्थ—शत्रुशवों को खाते हुए गिद्ध आदि तृप्ति का अनुभव करें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

श्वापदं मक्षिका क्रिमिः

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव॥ १०॥

१. **अथो**-(अपि च) और **सर्वम्** सब **श्वापदम्**=(शुनः पदानीव पदानि यस्य—सा०) शृगाल, व्याघ्र आदि हिंस्रपशु **मक्षिका**=मांसनिषेविणी नीलमक्षिका तथा **क्रिमिः**-मांस के जीर्ण होने पर पैदा हो जानेवाले प्राणी—ये सब, हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **तव रदिते**-तेरा आक्रमण होने पर **पौरुषेये कुणपे अधि**=पुरुष सम्बन्धी शव—शरीर पर **तृप्यन्तु**-तृप्त हों।

भावार्थ—सेनापति द्वारा शत्रु का विनाश होने पर शत्रुओं के मृत-शरीरों को हिंस्र पशु, मक्षिका व कृमि खानेवाले बनें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

निवाशा घोषः

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान्न्यर्बुदे।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन्रदिते अर्बुदे तव॥ ११॥

१. हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **न्यर्बुदे**-निश्चय से शत्रु पर आक्रमण करनेवाले उपसेनापते! **प्राणापानान् आगृह्णीतम्**-शत्रुसम्बन्धी प्राणापानों को सब ओर से ले लो, **संबृहतम्**=समूल उत्खिन्न कर दो। २. **तव रदिते**=आपके द्वारा शत्रुविलेखन होने पर **अमित्रेषु**=शत्रुओं पर **समीक्षयन्**-(षष्ठ्यर्थे प्रथमा) उस आक्रमण को देखते हुए लोगों के **निवाशाः घोषाः**-(नीचीनं वाश्यमानाः) दबी आवाजों में किये जाते हुए शब्द **संयन्तु**-चारों ओर उठ खड़े हों।

भावार्थ—हमारे सेनानी शत्रुओं को घेर लें व उत्खिन्न (नष्ट) कर दें। शत्रुओं पर होनेवाले आक्रमण को देखकर देखनेवाले चीख उठें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

उरुग्राहैः बाह्वङ्कैः

उद्वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज। उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान्न्यर्बुदे॥ १२॥

१. हे **न्यर्बुदे** निश्चय से शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले सेनानि! **अमित्रान्** हमारे शत्रुओं को **उद्वेपय**-आप कम्पित कर दो, **संविजन्ताम्**-वे शत्रु भय से विचलित हो उठें। **भिया संसृज** इन शत्रुओं को भय से आक्रान्त कर दीजिए। **अरुग्राहै:**-जाँघों के जकड़नेवाले तथा **बाह्वङ्कै:** बाहुओं को वक्र गतिवाला करनेवाले (क्रुञ्च to move in a curve) शस्त्रों से **अमित्रान् विध्य**=शत्रुओं को विद्ध कर दो।

भावार्थ—हे सेनानि! तू शत्रुओं को कम्पित व भयभीत करके दूर भगा दे। इन्हें ऐसे शस्त्रों से आक्रान्त कर जो इनकी जाँघों को जकड़ दें तथा भुजाओं को वक्र गतिवाला कर दें।

ऋषि:—**काङ्क्षायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

भुजाओं व चित्तों की मूढ़ता

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव॥ १३॥

१. हे **अर्बुदे** शत्रुसंहारक सेनापते! **तव रदिते**-तेरा आक्रमण होनेपर **एषाम्**-इन शत्रुओं की **बाहव:**-भुजाएँ विष के आवेश के कारण **मुह्यन्तु**-मूढ़—अपने व्यापार में असमर्थ हो जाएँ, **च**-और इन शत्रुओं के **हृदि** हृदय में और **यत्** जो **चित्ताकूतम्**-चित्त में सङ्कल्प हैं, वह भी मूढ़ व विस्मृत हो जाए। **एषाम्**-इन शत्रुओं का **किंचन**-कुछ भी रथ, तुरग, हस्ति आदि लक्षण बल(सैन्य) **मा उच्छेषि**=मत अवशिष्ट हो।

भावार्थ—हे सेनापते! तू शत्रुओं की भुजाओं व चित्तों को मूढ़ बना दे। शत्रुओं का सब सैन्य तेरे द्वारा समाप्त कर दिया जाए।

ऋषि: **काङ्क्षायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**पथ्यापङ्क्ति:** ॥

उर: प्रतिघ्नाना:, पटूरौ आघ्नाना:

प्रतिघ्नाना: सं धावन्तूर: पटूरावाघ्नाना:।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्य: पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव॥ १४॥

१. हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **तव रदिते**-तेरे द्वारा शत्रुविनाश होने पर **पुरुषे हते**-अपने पतियों के मारे जाने पर उनकी स्त्रियाँ **उर: प्रतिघ्नाना:**-छातियों को पीटती हुई **पटूरौ आघ्नाना:** जँघाओं को दुहत्थड़ मार-मारकर रोती हुईं **अघारिणी:**-भर्तृवियोगजनित दु:ख से पीड़ित हुई-हुई, **विकेश्य:**-विकीर्ण केशोंवाली **रुदत्य:**-रोती हुई **संधावन्तु**-मृतपुरुषों के शवों की ओर शीघ्रता से दौड़ें।

भावार्थ—युद्ध में पतियों के मारे जाने से शत्रु स्त्रियाँ विलाप करती हुई इधर-उधर भागें।

ऋषि:—**काङ्क्षायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**सप्तपदाशक्वरी** ॥

श्वन्वती: अप्सरस:

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे।
अन्त:पात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम्।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय॥ १५॥

१. **श्वन्वती:**-(शुना क्रीडार्थेन सारमेयेण सहिता:) कुत्तों को साथ लेकर घूमनेवाली **अप्सरस:**-गन्धर्व स्त्रियों को, **उत** और **रूपका:**-मायावश नाना रूप धारण करनेवाली सेनाओं को, हे **अर्बुदे** शत्रुसंहारक सेनापते! **त्वम्**=तू **सर्वा: ता:** उन सबको **अमित्रेभ्य: दृशे कुरु**-शत्रुओं को दिखा तथा **पात्रे अन्त: रेरिहतीम्**-पात्र के अन्दर फिर-फिर चाटती हुई **दुर्निहित एषिणीम्**-बुरी

तरह से फेंके हुए को चाहती हुई **रिशाम्**-हिंसक सेना को, **च**=और **उदारान्**=उत्कृष्ट शस्त्र-प्रयोगों को **प्रदर्शय**=शत्रुओं के लिए दिखलानेवाला बन।

भावार्थ—शत्रुओं के लिए विविध 'हिंसक, भक्षक व रूपक' सेनाओं को तथा उत्कृष्ट शस्त्र-प्रयोगों को दिखलाया जाए, जिससे वे युद्ध से भयभीत हो उठें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**१६ पञ्चपदाविराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्, १७ त्रिपदागायत्री** ॥

विविध मायावी प्रयोग

खड़ूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम्।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये। सर्पा इतरजना रक्षांसि॥ १६॥
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान्। स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः॥ १७॥

१. **खड़ूरे**-आकाश के दूरदेश में **अधि**=ऊपर **चङ्क्रमाम्**=चङ्क्रमणशील—इधर-उधर प्रादुर्भूत होती हुई **खर्विकाम्**=छोटी-छोटी **खर्ववासिनीम्**=कुछ चीखती-सी हुई (वासयते to scream) माया को तू शत्रुओं को दिखा। **ये**=जो **उदाराः**=विशाल योजनाएँ हैं, उन्हें शत्रुओं के लिए प्रदर्शित कर **च**=और **ये अन्तर्हिताः**=जो भीतर छिपे हुए **गन्धर्वाप्सरसः**=पृथिवी का धारण करनेवाले (गां धारयन्ति) व जलों में विचरनेवाले (अप्सु सरन्ति) **सर्पाः**=कुटिल चालवाले, **इतरजनाः**=अन्य लोग हैं, **रक्षांसि**=राक्षसी वृत्तिवाले क्रूर लोग हैं, उन्हें तू शत्रुओं के लिए दिखला। २. **चतुर्दंष्ट्रान् श्यावदतः कुम्भमुष्कान्**=चार-चार दाढ़ोंवाले, काले-काले दाँतोवाले, घड़े के समान बड़े-बड़े अण्डकोशोंवाले **असृङ्मुखान्**=रुधिर लिप्त मुखोंवाले भंयकर रूपों को शत्रुओं को दिखा। **ये च**=और जो **स्वभ्यसाः**=स्वयं भयंकर **उद्भ्यसाः**=दूसरों में भय उत्पन्न करने में समर्थ हैं, उन्हें शत्रुओं को दिखा।

भावार्थ—शत्रुओं को भयभीत करने के लिए विविध मायावी प्रयोगों का प्रदर्शन किया जाए।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

जयाँश्च जिष्णुश्च

उद्वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः। जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ॥ १८॥

१. हे **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **त्वम्**=तू **अमित्राणाम्**-शत्रुओं की **अमूः सिचः**-उन सेना-पंक्तियों को (सेना के प्रान्तभागों को) **उद्वेपय**=कम्पित कर दे। **जयान् च**=जीतता हुआ **च**-और **जिष्णुः**=जीतने के स्वभाववाला—ये दोनों **इन्द्रमेदिनौ**=प्रभु के साथ स्नेहवाले होते हुए **जयताम्**=विजय प्राप्त करें।

भावार्थ—हमारे सेनापति शत्रुसैन्य को कम्पित करें। हमारे ये अर्बुदि और न्युर्बुदि राजा के साथ स्नेहवाले होते हुए सदा जीतते हुए हों, जीतने के स्वभाववाले हों। ये शत्रुओं को पराजित करें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

अग्निजिह्वाः धूमशिखा

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतो३ऽमित्रो न्यर्बुदे।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया॥ १९॥

१. हे **न्यर्बुदे**=निश्चय से शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले सेनापते! **प्रब्लीनः**-(ब्ली वेष्टने)

घिरा हुआ **मृदित:** पिसे हुए गात्रोंवाला **हत:** गतप्राण हुआ हुआ **अमित्र:** शत्रु **शयाम्** भूमि पर सोनेवाला हो। **अग्निजिह्वा:** आग की ज्वालाएँ **धूमशिखा:** धूम के प्ररोहोंवाली **सेनया जयन्ती:** सेना के साथ शत्रुओं को पराजित करती हुई **यन्तु** गतिवाली हों।

भावार्थ—हे सेनापते! तू आग्नेयास्त्रों का प्रयोग करती हुई सेना के साथ विजय को प्राप्त हो।

ऋषि:—**काङ्कायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

'वरंवरम् हन्तु'

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन॥ २०॥

१. हे **अर्बुदे** शत्रुसंहारक सेनापते! **तया**-गतमन्त्र में वर्णित धूमशिखा व अग्निज्वाला से **प्रणुत्तानाम्** रणांगण से दूर धकेले हुए **अमित्राणाम्**-शत्रुओं के **वरंवरम्** श्रेष्ठ श्रेष्ठ योद्धाओं को **हन्तु** आप मार डालें। **शचीपति:** शक्ति का स्वामी **इन्द्र:** शत्रुविद्रावक राजा शत्रुओं को मारे। **अमीषां कश्चन मा मोचि**-इनमें से कोई छूट न जाए।

भावार्थ—शत्रुओं के प्रमुख व्यक्तियों को मार डाला जाए, विवशता में इनका सर्वोच्छेद ही ठीक है।

ऋषि:—**काङ्कायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

शत्रुओं के दिलों का दहल जाना

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु।
शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान्मोत मित्रिण:॥ २१॥

१. शत्रुओं के **हृदयानि**-हृदय **उत्कसन्तु** शरीर से उद्गत हो जाएँ—उखड़ जाएँ। **प्राण:**-इन शत्रुओं का प्राणवायु **ऊर्ध्व: उदीषतु** शरीर से ऊपर उठकर निकल जाए। **अमित्रान्**-शत्रुओं को **शौष्कास्यम्** भय के कारण मुख का सूख जाना (निर्द्रवत्वम्) **अनुवर्तताम्** अनुगत (प्राप्त) हो। **उत** इसके विपरीत (On the other hand) **मित्रिण: मा** हमारे मित्रभूत लोगों को आस्यशोष आदि प्राप्त न हो।

भावार्थ—हमारे शत्रुओं के दिल उखड़ जाएँ, उनके प्राण शरीर से निकलने को हों और आस्य (मुख) शोषण से वे मृत्यु को प्राप्त हों। हमारे मित्रों की ऐसी स्थिति न हो।

ऋषि: —**काङ्कायन:** ॥ देवता—**अर्बुदि:** ॥ छन्द:—**सप्तपदाशक्वरी** ॥

तूपरा: बस्ताभिवासिन:

ये च धीरा ये चाधीरा: पराञ्चो बधिराश्च ये।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिन:।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय॥ २२॥

१. **ये च धीरा:**-और जो धीर (धिया ईर्ते इति धीर:)—समझदार हैं, परन्तु **ये अधीरा:** जो शत्रु पर आक्रमण के लिए अति अधीर (चञ्चल) हैं, **च** और **ये**-जो **पराञ्च:** परे—दूर तक गति करनेवाले हैं, **बधिरा: च**-आक्रमण की अधीरता में रुकने की किसी भी बात को न सुननेवाले हैं, **तमसा:** आक्रमण के विषय में किसी भी विघ्न को न सोचनेवाले तमोगुण प्रधान हैं, **ये च**-और जो **तूपरा:**-तोप के गोले के समान हिंसक हैं (तुप हिंसायाम्), **अथो** और **बस्ताभिवासिन:**-(बस्त गतिहिंसायाचनेषु) सदा हिंसा में ही निवासवाले हैं, अर्थात् स्वभावत: क्रूर हैं, **सर्वान् तान्**-उन सबको, हे **अर्बुदे** शत्रुसंहारक सेनापते! **त्वम्**-तू **अमित्रेभ्य: दृशे**

कुरु=शत्रुओं के देखने के लिए कर **च**-और **उदारान् प्रदर्शय**=युद्ध की प्रकृष्ट आयोजनाओं को उनके लिए दिखा, जिससे वे शत्रु भयभीत होकर युद्ध की रुचि व उत्साह से रहित हो जाएँ।

भावार्थ—शत्रु हमारे योद्धओं के उत्साह व युद्ध की विशाल आयोजनाओं को देखकर भयभीत हो उठें और युद्ध के उत्साह को छोड़ दें।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

अर्बुदि + त्रिषन्धिः च

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान्नो वि विध्यताम्।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन्हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः॥ २३॥

१. **अर्बुदिः च**-शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला सेनापति **च**-और **त्रिषन्धिः**-तीनों 'जल, स्थल और वायु' सेनाओं का अधिष्ठाता राजा **नः अमित्रान्** हमारे शत्रुओं को **विविध्यताम्**-विद्ध करें। इसप्रकार इन्हें विद्ध करें कि हे **इन्द्र**-शत्रुओं के विद्रावक, **वृत्रहन्**-राष्ट्र को घेरनेवालों को नष्ट करनेवाले, **शचीपते**=शक्ति के स्वामिन् राजन्! **यथा**-जिससे **एषाम्**-इन **अमित्राणाम्**-शत्रुओं के **सहस्रशः हनाम**=हज़ारों को ही एक उद्योग से हम मारनेवाले हों।

भावार्थ—शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला सेनापति तथा 'जल, स्थल व वायु' सेनाओं का शासक राजा हमारे शत्रुओं को इसप्रकार विद्ध करें कि हज़ारों शत्रु एक ही उद्योग से नष्ट हो जाएँ।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाशक्वरी** ॥

न अन्न की कमी, न योद्धाओं की

वनस्पतीन्वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान्पितॄन्।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय॥ २४॥

१. **वनस्पतीन्**-बिना पुष्प के फलवाले वृक्षों को, **वानस्पत्यान्**=फूलों के बाद फल देनेवाले वृक्षों को (वानस्पत्यं फलैः पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पतिः) **ओषधीः**=व्रीहि-यव आदि **उत**-तथा **वीरुधः**-विरोहणशील लताओं को, हे **अर्बुदे**-सेनापते! **त्वम्**-तू **अमित्रेभ्यः**=शत्रुओं के लिए **दृशे कुरु**-दिखला। शत्रु को यह स्पष्ट हो जाए कि हम इन्हें घेरकर भूखा नहीं मार सकते। २. **गन्धर्वाप्सरसः**=(गां धारयन्ति, अप्सु सरन्ति) पृथिवी का धारण करनेवाले व जल में विचरनेवाले सैनिकों को, **सर्पान्**-सर्पवत् कुटिल गतिवाले योद्धओं को, **देवान्**-विजिगीषुओं को **पुण्यजनान्**=पवित्रात्माओं को व **पितॄन्**-रक्षक पितरों को (बुजुर्गों को) **सर्वान् तान्**-उन सबको **च**-और **उदारान्**-युद्ध के विशाल आयोजनों को शत्रुओं के लिए **प्रदर्शय**-दिखा, जिससे वे युद्ध की पूरी तैयारी व सभी के सहयोग को देखकर युद्ध का उत्साह छोड़ दें।

भावार्थ—शत्रु को यह स्पष्ट हो जाए कि न तो यहाँ अन्न की कमी है, न ही योद्धओं की। इसप्रकार शत्रु युद्ध की पूरी तैयारी को देखकर भयभीत हो जाएँ और युद्ध से पराङ्मुख हो जाएँ।

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**सप्तपदाशक्वरी** ॥

देवानुग्रह से शत्रुओं पर शासन

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन्नदिते अर्बुदे तव॥ २५॥

१. हे **अर्बुदे**-सेनापते! **अमित्रेषु** शत्रुओं पर **तव रदिते**=तेरा आक्रमण होनेपर, उस आक्रमण को **समीक्षयन्**-(व्यत्येन एकवचनम्) देखते हुए **मरुतः**-वायुओं के समान वेगवान् भट, **देवः आदित्यः**-विजिगीषु, सूर्यसम तेजस्वी पुरुष तथा **ब्रह्मणस्पतिः** ज्ञानी पुरुष **वः**-(अमित्रेषु) तुम्हारे शत्रुओं पर **ईशाम् चक्रुः** शासन करें। **इन्द्रः च अग्निः च** शत्रुविद्रावक राजा, अग्निसम तेजस्वी सैनिक, **धाता मित्रा प्रजापतिः**-धारण करनेवाला, प्रमीति (मृत्यु) से बचानेवाला, प्रजा का रक्षक देव **वः ईशाम् (चक्रुः)** -शत्रुओं पर तुम्हारे शासन को स्थापित करे तथा **ऋषयः** (ऋष् to kill) शत्रुसंहारक तत्त्वद्रष्टा लोग **वः ईशाम् (चक्रुः)**-शत्रुओं पर तुम्हारा शासन स्थापित करें।

भावार्थ—जब हमारे सेनापति द्वारा शत्रुओं पर आक्रमण किया जाता है तब सब देव हमारी सहायता करते हैं और शत्रुओं पर हमारा शासन स्थापित होता है। (God helps those who help themselves)

ऋषिः—**काङ्कायनः** ॥ देवता—**अर्बुदिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

मित्राः देवजनाः

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम्॥ २६ ॥

१. **तेषाम्**-उन **सर्वेषाम्**-सब शत्रुओं के **ईशानाः**=शासक होने के हेतु से **उत्तिष्ठत**-उठो और **संनह्यध्वम्** अपनी कमर कस लो—युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ। हे **मित्राः**=हमारे साथ स्नेहवाले **देवजनाः** शत्रु विजिगीषावाले लोगो! **यूयम्**-तुम सब **इमं संग्रामं संजित्य**-इस संग्राम को सम्यक् जीतकर **यथालोकम्** अपने अपने स्थान पर, नियत पदों पर **वितिष्ठध्वम्** विशेषरूप से स्थित होओ।

भावार्थ—हम सब मित्र व विजिगीषावाले होते हुए अपने शत्रुओं को परास्त करके ही दम लें।

शत्रुविनाश के लिए आवश्यक है कि हम अपना सम्यक् परिपाक करें (भ्रस्ज पाके), 'भृगु' बनें और अङ्ग प्रत्यङ्ग में रसवाले शक्तिसम्पन्न 'अङ्गिराः' बनें। यह 'भृगु अंगिरा' ही अगले सूक्त का ऋषि है—

१०. [दशमं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**विराट्पथ्याबृहती** ॥

शत्रुविद्रावण

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥ १ ॥

१. हे **उदाराः** औदार्यगुण से युक्त सेनानायको! **केतुभिः सह** अपनी ध्वजाओं के साथ **उत्तिष्ठत**-युद्ध के लिए उठ खड़े होओ। **संनह्यध्वम्**=कवच आदि धारण करके युद्ध के लिए उद्युक्त हो जाओ। हे **सर्पाः** सर्पवत् कुटिल गतिवाले सैनिको! **इतरजनाः** सामान्य लोगों से भिन्न वीर पुरुषो! **रक्षांसि**-रक्षण समर्थ पुरुषो! **अमित्रान् अनुधावत** शत्रुओं का शीघ्रता से पीछा करनेवाले बनो।

भावार्थ—देशरक्षा के लिए हम पताकाओं को लेकर उठ खड़े हों—सन्नद्ध हो जाएँ। हमारे वीर सैनिक शत्रुओं का पीछा करके उन्हें खदेड़ दें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**षट्पदात्रिष्टुबगर्भाऽतिजगजी** ॥

सुव्यवस्थित राष्ट्र

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम्॥ २॥

१. **वः**:-तुम्हारा **राज्यम्**=राज्य **ईशां वेद**-शासनशक्ति को जानता है, अर्थात् राष्ट्र में सर्वत्र शासन की सुव्यवस्था है। हे **त्रिषन्धे**=जल, स्थल व वायु सेना के साथ समर्थ राजन्! **अरुणैः केतुभिः सह**=विजय की सूचक अरुण वर्णवाली पताकाओं के साथ रहनेवाला जो तू है, उससे **त्रिषन्धेः**=तुम त्रिषन्धि के **चेतसि**=चित्त में वे सब **दुर्णामानः**-(दुर् नम्) दुष्टता को झुकानेवाले—राष्ट्र से दुष्टता को दूर करनेवाले **मानवाः**=विचारशील पुरुष **उपासताम्**=समीपता से रहनेवाले हों—**ये**=जो **दिवि**=द्युलोक में निवास करनेवाले हैं, अर्थात् जो ज्ञान में विचरण करते हुए सदा मस्तिष्करूप द्युलोक में निवास करते हैं, **ये अन्तरिक्षे**-जो उपासना-प्रवृत्त लोग सदा हृदयान्तरिक्ष में निवास करते हैं, **ये च**-और जो सामान्य व्यवहार में प्रवृत्त लोग **पृथिव्याम्**-इस पृथिवी पर हैं।

भावार्थ—राष्ट्र में शासन सुव्यवस्थित हो। राजा की विजयसूचक पताकाएँ सदा फहराती रहें। राजा दुष्टता को दूर करनेवाले उन सब पुरुषों का ध्यान करे(रक्षण करे) जोकि 'ज्ञान, उपासना व पार्थिव (संसारी) व्यवहार' में प्रवृत्त हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**विराडास्तारपङ्क्तिः** ॥

अयोमुखाः सूचीमुखाः

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान्वज्रेण त्रिषन्धिना॥ ३॥

१. इस **वज्रेण**=वज्र-तुल्य दृढ़ शरीरवाले (यदश्नामि बलं कुर्व इत्थं वज्रमाददे) **त्रिषन्धिना**= 'जल, स्थल व वायु' सेना के अध्यक्ष से प्रयुक्त हुए-हुए ये बाण **अमित्रान् आसजन्तु**=शत्रुओं को जा-जाकर लगें। जो बाण **अयोमुखाः**=लोहे के समान कठोर मुखवाले हैं, **सूचीमुखाः**=सूई के समान तीक्ष्ण चोंचवाले हैं **अथो**=और **विकङ्कतीमुखाः**-कंघी के समान मुखवाले हैं, **क्रव्यादः**=कच्चे मांस को खा-जानेवाले हैं और **वातरंहसः**-वायु के समान वेगवाले हैं।

भावार्थ—हमारे वज्रतुल्य दृढ़ शरीरवाले त्रिषन्धि सेनानी से छोड़े गये तीक्ष्ण बाण शत्रुओं को विद्ध करनेवाले हों।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

सुहिता सेना

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु। त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे॥ ४॥

१. हे **जातवेद**-उत्पन्न ज्ञानवाले—समझदार **आदित्य**-(आदानात्, दाप् लवने) समन्तात् शत्रुओं का खण्डन करनेवाले सेनापते! तू **बहु कुणपम्**=बहुत शवों को **अन्तः धेहि**-यहाँ रणांगण में स्थापित करनेवाला हो, अर्थात् सहस्रशः शत्रुओं को धराशायी करनेवाला बन। २. **इमम्**=यह **सुहिता**=सम्यक् धारण की गई **मे सेना**=मेरी सेना **त्रिषन्धेः**-'जल, स्थल व वायु' सेना से मेलवाले मुख्य सेनापति के **वशे अस्तु**=वश में हो।

भावार्थ—हमारा सेनापति समझदार, उपायकुशल (full of resources) व शत्रुओं का समन्तात् छेदन करनेवाला बने। सम्यक् धारण की गई यह सेना उसके वश में हो। विजय के

लिए आवश्यक है कि हमारी सेना सुशिक्षित हो, उसका सम्यक् पालन किया जाए तथा वह पूर्णतया सेनापति के शासन में हो।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

युद्धयज्ञ में प्राणाहुति

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया॥ ५॥

१. हे **देवजन**-शत्रु को जीतने की कामनावाले! **अर्बुदे**-शत्रुसंहारक सेनापते! **सेनया सह** सेना के साथ **त्वम् उत्तिष्ठ**-तू उठ खड़ा हो—युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जा। **अयम्**-यह **बलिः** युद्ध यज्ञ में आत्मबलि **वः आहुतः** आपके द्वारा दी गई है। युद्ध में देशरक्षा के लिए प्राणों तक को आहुत कर देनेवाले ये सैनिक हैं। यह **आहुतिः** प्राणों को युद्ध-यज्ञ में आहुत कर देना **त्रिषन्धेः प्रिया** 'जल, स्थल व वायु सेना' के सेनापति को प्रिय है।

भावार्थ—सेनापति सेना के साथ शत्रु के मुक़ाबले के लिए सन्नद्ध हो जाए। सेना द्वारा देशरक्षा के लिए युद्ध में अपने प्राणों की बलि दी जाती है। युद्ध यज्ञ में पड़नेवाली यह प्राणों की आहुति सेनापति को प्रिय ही लगती है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शितिपदी—चतुष्पदी

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया॥ ६॥

१. **शितिपदी** (शो to sharpen) तीव्र गतिवाली—तीक्ष्ण चरणोंवाली, **इयम्** यह **चतुष्पदी**-(हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गचतुष्टयम्) 'हाथी, घोड़े, रथ व पैदल' इन चारों सेनाओंवाली **शरव्या** (शरौ कुशला) बाणविद्या में कुशल सेना **संद्यतु** शत्रुओं का खण्डन करनेवाली हो। २. हे **कृत्ये**-शत्रुओं का छेदन करनेवाली सेने! तू **त्रिषन्धेः सेनया सह**-त्रिषन्धि की इस 'जल, स्थल व वायु' सेना के साथ **अमित्रेभ्यः भव**-शत्रुओं के विनाश के लिए हो ('मशकाय धूमः' की भाँति यहाँ चतुर्थी का प्रयोग है)।

भावार्थ—सेना तीव्र गतिवाली हो, वह 'हाथी, घोड़े, रथ व प्यादों' से युक्त हो, बाणविद्या में कुशल हो, यह शत्रुओं का छेदन करनेवाली हो।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

धूमाक्षी कृधुकर्णी

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः॥ ७॥

१. **धूमाक्षी** आग्नेयास्त्रों के धुएँ से आवृत आँखोंवाली, **कृधुकर्णी च** और पटहध्वनि से हतश्रवण सामर्थ्यवाली (अल्पश्रोत्रा) परकीया सेना **क्रोशतु** किंकर्त्तव्यतामूढ़ बनी हुई आक्रोश करे। २. इसप्रकार **त्रिषन्धेः** 'जल स्थल व वायुसेना' के सेनापति की **सेनया**-सेना के द्वारा **जिते** शत्रु को जीत लेने पर **अरुणाः केतवः सन्तु** हमारी अरुण वर्ण की पताकाएँ फहराएँ। हमारी विजयसूचक अरुणवर्ण की पताकाएँ आकाश में फहराएँ।

भावार्थ—शत्रुसेना हमारे आग्नेयास्त्रों के धूम से व्याकुल आँखोंवाली व युद्ध वाद्य की ध्वनि से विनष्ट श्रवण सामर्थ्यवाली होकर चीखें व चिल्लाएँ। हमारी अरुण वर्ण की विजय पताकाएँ

आकाश में फहराएँ।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**विराट्त्रिष्टुप्** ॥

मृत शत्रुसैन्य पर

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम्॥ ८॥

१. हमारी विजय होने पर मृतशत्रुसैन्य पर मांसभक्षण के लिए वे **पक्षिणः**=पक्षी **अव अयन्ताम्**-नीचे उतरें (अवाङ्मुखं निपद्यन्ताम्) **ये वयांसि**-जो कौवे आदि पक्षी **अन्तरिक्षे**-अन्तरिक्षे में **चरन्ति**=गतिवाले होते हैं, तथा **ये दिवि**=जो गिद्ध-चील आदि द्युलोक में—बहुत ऊपर आकाश में विचरते हैं। २. **श्वापदः**=कुत्ते, गीदड़ आदि श्वापद, **मक्षिका :**-मक्खियाँ **संरभन्ताम्**= शवों के भक्षण के लिए उद्यत हों (अपक्रमन्ताम्) तथा **आमादः**=कच्चा मांस खानेवाले **गृध्राः**=गिद्ध **कुणपे**=शवों पर **रदन्ताम्**=अपनी चोंचों व पञ्जों से विलेखन करें।

भावार्थ—मृतशत्रुसैन्य के शव पक्षियों, हिंस्रपशुओं, मक्खियों व गिद्धों का भोजन बनें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**पुरोविराड्पुरस्ताऽऽयोतिस्त्रिष्टुप्** ॥

इन्द्रसन्धा

यामिन्द्रेण सन्धां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते।
तयाऽहमिन्द्रसन्धया सर्वान्देवानिह हुव इतो जयत मामुतः॥ ९॥

१. हे **बृहस्पते**-बृहतीसेना के पति! **यां सन्धाम्**-जिस प्रतिज्ञा का **इन्द्रेण ब्रह्मणा च**=मुझ शत्रुविद्रावक राजा तथा राष्ट्र के ज्ञानियों के साथ **समधत्थाः**-आपने संधारित किया है, **अहम्**-मैं इस राष्ट्र का शासक **तया इन्द्रसंधया**=उस राजा के द्वारा की गई प्रतिज्ञा के हेतु से **सर्वान् देवान्**-सब विजिगीषुओं को **इह**-यहाँ **हुवे**-पुकारता हूँ। हे देवो! आप **इतः जयत**-इन हमारी सेनाओं में जय को स्थापित करो **मा अमुतः**-उन शत्रुसेनाओं में नहीं।

भावार्थ—राजा प्रजा के चुने हुए ज्ञानी पुरुषों के साथ प्रजारक्षण की प्रतिज्ञा करता है। उस प्रतिज्ञा की पूर्त्यर्थ वह विजिगीषु पुरुषों को आमन्त्रित करता है और शत्रुओं को पराजित कर राष्ट्र का रक्षण करता है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

असुरक्षयणं वधम्

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः। असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन्॥ १०॥

१. **बृहस्पतिः**-सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी **आंगिरसः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले देवमन्त्री ने तथा **ब्रह्मसंशिताः**=ज्ञान से तीक्ष्ण बने हुए **ऋषयः**=ऋषियों ने **दिवि**=विजिगीषा होने पर **असुरक्षयणं वधम्**-असुरों (दुष्ट शत्रुओं) का विनाश करनेवाले आयुधों तथा **त्रिषन्धिम्**-'जल, स्थल, वायु' सेना के सेनापति का **आश्रयन्**=आश्रय किया।

भावार्थ—सेनापति के व अस्त्रों के ठीक होने पर ही विजय सम्भव है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ओजसे च बलाय च

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च॥ ११॥

१. **येन** जिस त्रिषन्धि सेनापति के द्वारा **गुप्तः**-रक्षित हुआ हुआ **असौ** वह **आदित्यः** ज्ञान का आदान करनेवाला '**ब्राह्मण' च**-तथा **इन्द्रः** शत्रुविद्रावक '**क्षत्रिय' उभौ**-दोनों **तिष्ठतः** अपने अपने कर्त्तव्य-कर्मों में स्थित होते हैं, उस **त्रिषन्धिम्**-'जल, स्थल व वायु' सेना के साथ मेलवाले सेनापति को **देवाः**-सब विजिगीषु लोग **अभजन्त** सेवित करते हैं, जिससे **ओजसे च बलाय च** वे वृद्धि के साधनभूत ओज को तथा शत्रुक्षय के साधनभूत बल को प्राप्त कर सकें।

भावार्थ—सेनापति के द्वारा शत्रुओं को परास्त करने पर सुरक्षित राष्ट्र में सब ब्राह्मण व क्षत्रिय अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्थित होते हैं। इस सुरक्षित राष्ट्र में सब देव ओजस्विता व बल का सम्पादन करते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**पञ्चपदापथ्यापङ्क्तिः** ॥

बृहस्पति आङ्गिरस का वज्र

सर्वाँल्लोकान्त्समजयन्देवा आहुत्यानया।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम्॥ १२॥

१. **आङ्गिरसः** अङ्ग प्रत्यङ्ग में रसवाले शक्तिशाली शरीरवाले **बृहस्पतिः** ज्ञानी पुरुष ने **यम्**-जिस **असुरक्षयणम्** असुरों का क्षय करनेवाले **वधम्** आयुधभूत **वज्रम्**-वज्र को **असिञ्चत** सिक्त किया—जिस क्रियाशीलतारूप वज्र को (वज् गतौ) अपनाया **अनया आहुत्या** इस वज्ररूप आहुति के द्वारा **देवाः** देवों ने **सर्वान्** सब लोकों को **समजयन्** जीत लिया। क्रियाशीलतारूपी वज्र से ही देव विजयी बनते हैं।

भावार्थ—जीवन में क्रियाशील बनकर हम सब आसुरभावों को परास्त करें और इसप्रकार शरीर में 'आङ्गिरस' तथा मस्तिष्क में बृहस्पति बनें। यही सब लोकों को जीतने का मार्ग है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाजगती** ॥

अमित्रान् हन्मि ओजसा

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम्।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान्हन्म्योजसा॥ १३॥

१. **आङ्गिरसः बृहस्पतिः**-शक्तिशाली ज्ञानीपुरुष ने **यम्**-जिस **असुरक्षयणं वधम्** आसुरभावों के विनाशक आयुध **वज्रं असिञ्चतः**क्रियाशीलता को अपने जीवन में सिक्त किया, **तेन**-उसी क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा **अहम्**-मैं **अमूं सेनाम्**-उस शत्रुसेना को **निलिम्पामि** नितरां छिन्न करता हूँ। हे **बृहस्पते**-प्रभो! मैं अब **ओजसा** ओजस्विता से **अमित्रान् हन्मि** सब शत्रुओं को विनष्ट कर देता हूँ।

भावार्थ—क्रियाशीलता रूप वज्र से आसुरभावों का विनाश करते हुए हम शत्रुसैन्य को छिन्न कर डालें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञशीलता व आन्तर शत्रुविजय

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम्।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः॥ १४॥

१. **ये**-जो **वषट्कृतम्**-यज्ञ में वषट्शब्दोच्चारण पूर्वक आहुत किये हुए यज्ञशेष को ही **अश्नन्ति**-खाते हैं, वे **सर्वे**-सब **देवाः**-देववृत्ति के व्यक्ति **अत्यायन्ति**-काम क्रोध आदि शत्रुओं

का अतिक्रमण करके प्रभु के सम्मुख उपस्थित होते हैं। २. इसलिए हे समझदार पुरुषो! **इमां आहुतिं जुषध्वम्**=इस आहुति का सेवन करनेवाले बनो। इस यज्ञशीलता के द्वारा **इतः जयत**=इधर से विजय प्राप्त करो, अर्थात् शरीरस्थ शत्रुओं को जीतने में समर्थ होओ। **मा अमुतः**=दूर से—बाहर से विजय करनेवाले ही न बनो। बाह्यशत्रुओं को जीतने का वह महत्त्व नहीं, जोकि अन्तःशत्रुओं को जीतने का महत्त्व है।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनकर अन्तःशत्रुओं के विजेता बनें। बाह्यशत्रुओं के विजय से ही अपने को कृतकृत्य न मान बैठें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

महती सन्धा

सर्वे॑ दे॒वा अ॒त्याय॑न्तु त्रिष॑न्धेराहु॑तिः प्रि॒या।
स॒न्धां म॑ह॒तीं र॑क्षत॒ यया॒ग्रे असु॑रा जि॒ताः॥ १५॥

१. **सर्वे देवाः**=सब विजिगीषु पुरुष **अति आयन्तु**=काम, क्रोध आदि को लाँघकर प्रभु के समीप प्राप्त हों। **त्रिषन्धेः**='जल, स्थल व वायु' सेना के सेनापति की **आहुतिः**=देशरक्षा के यज्ञ में दी गई प्राणों की आहुति **प्रिया**=प्रीति का सम्पादन करनेवाली है। 'तन-मन-धन' की आहुति देकर ही व्यक्ति मनुष्यों का व प्रभु का प्रिय बनता है। २. **महतीं संधाम्**=सर्वमहान् प्रतिज्ञा को कि **'यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्'** अब की बार संसार में आने पर अवश्य प्रभु की शरण में आऊँगा' गर्भावस्था में की गई इस सर्वमहान् प्रतिज्ञा को रक्षित करो। इस प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, तुम इस बात को न भूलना कि यही वह महती संधा है **यया**=जिसके द्वारा **अग्रे**=सर्वप्रथम **असुराः जिताः**=देवों द्वारा असुरों का पराजय किया गया।

भावार्थ—हम तन, मन, धन की लोकहित के यज्ञ में आहुति देते हुए प्रभु को प्राप्त करें। इस आहुति से ही तो प्रभु को प्राप्त करने के लिए देव, असुरों का पराजय करते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**षट्पदाककुम्मत्यनुष्टुप्त्रिष्टुब्गर्भाशक्वरी** ॥

'वायु, इन्द्र, आदित्य व चन्द्र' देव-सम्बन्धी अस्त्र

वा॒युर॒मित्रा॑णामिष्व॒ग्राण्याञ्च॑तु।
इन्द्र॑ एषां बा॒हून्प्रति॑ भनक्तु मा श॑कन्प्रति॒धामिषु॑म्।
आ॒दि॒त्य ए॑षाम॒स्त्रं वि ना॑शयतु च॒न्द्रमा॑ यु॒ता॒मग॑तस्य॒ पन्था॑म्॥ १६॥

१. **वायुः**=हमारा वायव्यास्त्र **अमित्राणाम्**=शत्रुओं के **इषु अग्राणि**=बाणों के अग्रभागों को **आ अञ्चतु**=आभिमुख्येन प्राप्त हो—लक्ष्यप्राप्ति से पूर्व ही शत्रुबाणों को गिरा दिया जाए। **इन्द्रः**=ऐन्द्र (विद्युत् का) अस्त्र **एषाम्**=इन शत्रुओं की **बाहून् प्रतिभनक्तु**=भुजाओं को भग्न कर दे, इसप्रकार भग्न कर दे कि वे **इषुं प्रतिधाम्**=बाण को पुनः धनुष पर धारण करने के लिए **मा शकन्**=मत समर्थ हों। २. **आदित्यः**=आग्नेयास्त्र (आदित्य का) **एषाम्**=इन शत्रुओं के **अस्त्रम्**=अस्त्रों को **विनाशयतु**=नष्ट कर दे। इनके सामर्थ्य को कुण्ठित करके समाप्त कर दे। **चन्द्रमाः**=चन्द्र-सम्बन्धी-(वारुणास्त्र)-अस्त्र **अगतस्य**=हम तक आने की इच्छावाले, परन्तु हम तक न पहुँचे हुए शत्रु के **पन्थाम्**=मार्ग को **युताम्**=उससे पृथक् कर दे—शत्रु को हम तक पहुँचने का मार्ग ही प्राप्त न हो।

भावार्थ—विविध अस्त्रों के प्रयोग से हम शत्रु को हमपर आक्रमण के अयोग्य बना दें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः** ॥

देवों का ब्रह्मरूप वर्म

यदि॑ प्रे॒युर्दे॑वपु॒रा ब्रह्म॒ वर्मा॑णि चक्रि॒रे।
त॒नू॒पानं॑ परि॒पाणं॑ कृण्वा॒ना यदु॑पोचि॒रे सर्वं॒ तद॑र॒सं कृ॑धि॥ १७॥

१. **यदि**=(यदा) जब **देवपुराः**=देवनगरियों में निवास करनेवाले व्यक्ति **प्रेयुः**=शत्रु पर आक्रमण के लिए चलते हैं तब **ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे**=ज्ञान को व प्रभु को अपना कवच बनाते हैं। इस ब्रह्मकवच से ये अपना रक्षण करनेवाले होते हैं। २. ज्ञानपूर्वक तथा प्रभुस्मरणपूर्वक **तनूपानम्**=अपने शरीरों का रक्षण तथा **परिपाणम्**=समन्तात् राष्ट्र का रक्षण **कृण्वानाः**=करते हुए ये **सर्वं तत् अरसं कृधि**=उस सबको नि:सार कर देते हैं, **यत्**=जो **उप अचिरे**=हमारे विषय में शत्रुओं ने हीन बातें कही हैं। शत्रुओं की अभिमान भरी बातों को, उन्हें परास्त करके, ये व्यर्थ कर देते हैं।

भावार्थ—देवलोग प्रभु को अपना कवच बनाकर शत्रु पर आक्रमण करते हैं। शत्रुओं को परास्त करके ये उनकी डींगों को समाप्त कर देते हैं।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मृत्युना च पुरोहितम्

क्र॒व्यादा॑नुव॒र्तय॑न्मृ॒त्युना॑ च पु॒रोहि॑तम्। त्रिष॑न्धे॒ प्रेहि॒ सेन॑या॒ जया॒मित्रा॒न्प्र प॑द्यस्व॥ १८॥

१. हे **त्रिषन्धे**='जल, स्थल व वायु' सेना के अध्यक्ष! तू **क्रव्यादा**=मांसभक्षक पशुओं से इन शत्रुओं को **अनुवर्तयन्**=अनुव्रत करता हुआ, **च**=और **मृत्युना पुरोहितम्**=मृत्यु ही जिसके सामने खड़ी है, अर्थात् जो अब शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, उस शत्रु को **सेनया प्रेहि**=सेना के साथ आक्रान्त कर, **जय**=इन शत्रुओं को जीत ले तथा **अमित्रान् प्रपद्यस्व**=इन शत्रुओं के मध्य में विजेता के रूप में प्रवेश करनेवाला हो।

भावार्थ—हमारा त्रिषन्धि सेनापति शत्रुओं को परास्त करके विजेता के रूप में उनके मध्य में, सन्धि आदि के लिए, प्रवेश करे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तमसा परिवारय (मोहनास्त्र)

त्रिष॑न्धे॒ तम॑सा॒ त्वम॒मित्रा॒न्परि॑ वारय। पृ॒ष॒दा॒ज्यप्र॑णुत्ताना॒ं मामीषां॒ मोचि॒ कश्च॒न॥ १९॥

१. **त्रिषन्धे**=हे 'जल, स्थल व वायु' सेना का सन्धान करनेवाले सेनापते! **त्वम्**=तू **तमसा**=धूम्रास्त्र द्वारा उत्पन्न किये गये अन्धकार से **अमित्रान् परिवारय**=शत्रुओं को घेर ले। शत्रु चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार में होते हुए किंकर्त्तव्यमूढ़-से बन जाएँ। २. **पृषद् आज्य-प्रणुत्तानाम्**=(पृष to kill आज्य=अंज् to go) विनाशकारी आक्रमण (धावे) से परे धकेले हुए **अमीषाम्**=उन शत्रुओं में **कश्चन मा मोचि**=कोई भी छूटे नहीं। सब शत्रुओं का सफाया ही कर दिया जाए।

भावार्थ—त्रिषन्धि को चाहिए कि वह शत्रुसैन्य को, अन्धकार-ही-अन्धकार में करके, विनाशक आक्रमण द्वारा समाप्त कर दे।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शत्रुसैन्य सम्मोहन

शि॒ति॒प॒दी सं प॑तत्व॒मित्रा॑णाम॒मूः सिचः॑। मु॒ह्यन्त्व॒द्यामूः सेना॑ अ॒मित्रा॑णां न्यर्बुदे॥ २०॥

१. **शितिपदी**=(शि to sharpen) शीघ्र व तीव्र गतिवाली हमारी सेना **संपततु**=शत्रुसैन्य पर टूट पड़े। **अमित्राणाम्**=शत्रुओं की **अमूः**=वे दूरस्थ **सिचः**=सेनापक्तियाँ हमारी सेना द्वारा आक्रान्त की जाएँ। **अद्य**=आज **अमित्राणाम्**=शत्रुओं की **अमूः सेना**=वे सेनाएँ, हे **न्यर्बुदे**=निश्चय से शत्रुओं पर धावा बोलनेवाले सेनापते! **मुह्यन्तु**=हमारी सेनाओं के आक्रमण से मूढ़ हो जाएँ।

भावार्थ—हमारी सेनाओं के प्रबल आक्रमण से शत्रुसैन्य सम्मूढ़ हो जाए।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**विराट्पुरस्ताद्बृहती** ॥

जहि एषां वरं वरम्

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्ये॑षां वरंवरम्। अनया जहि सेनया॥ २१ ॥

१. हे **न्यर्बुदे**=निश्चय से शत्रुओं पर धावा बोलनेवाले सेनापते! **अमित्राः**=जो शत्रुसेनाएँ **मूढा**=मोहावस्था में चली गई हैं, **एषाम्**=इनके **वरंवरम् जहि**=श्रेष्ठ-श्रेष्ठ—चुने हुए वीरों को मार डाल। **अनया सेनया**=इस सेना के द्वारा **जहि**=इन्हें विनष्ट कर डाल।

भावार्थ—मूढ़ बनी हुई शत्रुसेनाओं के मुख्य व्यक्तियों को चुन-चुनकर मार डाला जाए। शत्रु को पराजित करने का यही सर्वोत्तम उपाय है।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ज्यापाश—कवचपाश—रथपाश

यश्च॑ कव॒ची यश्चा॑कव॒चो॒३॒॑ऽमित्रो॒ यश्चाज्म॑नि।
ज्या॒पा॒शैः क॑वचपा॒शैरज्म॑ना॒भिह॑तः शयाम्॥ २२ ॥

१. **यः च कवची**=जो कवचवाला है, **यः च अकवचः**=और जो कवच नहीं पहने हुए है, **यः च अमित्रः**=और जो शत्रु **अज्मनि**=(अजति अनेन इति अज्म रथः) रथारूढ़ है, वह **ज्यापाशैः**=धनुर्गत मौर्वी के पाशों से, **कवचपाशैः**=कवच के पाशों से तथा **अज्मना**=रथगत पाशों से **अभिहतः**=हिंसित हुआ-हुआ **शयाम्**=रणांगण में लेटे।

भावार्थ—कवचधारी शत्रुसैनिक मौर्वी पाशों से हिंसित किये जाएँ, बिना कवचवाले कवचपाशों से हिंसित हों तथा रथस्थ रथपाशों का शिकार बनें। इसप्रकार हम शत्रुसैन्य को पराजित करें।

ऋषिः—**भृग्वङ्गिराः** ॥ देवता—**त्रिषन्धिः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वर्मिणः—सादिनः

ये व॒र्मिणो॒ येऽव॒र्माणो॑ अ॒मित्रा॒ ये च॑ व॒र्मिणः॑।
सर्वां॒स्ताँ अ॑र्बुदे ह॒ताञ्छ्वानो॑ऽदन्तु भूम्या॑म्॥ २३ ॥
ये र॒थिनो॒ ये अ॑र॒था अ॑सा॒दा ये च॑ सा॒दिनः॑।
सर्वा॑नदन्तु ता॒न्ह॒ता॒न्गृध्राः॑ श्ये॒नाः प॑त॒त्रिणः॑॥ २४ ॥

१. **ये**=जो **अमित्राः**=शत्रु **वर्मिणः**=शस्त्रवारक कवच से युक्त हैं, **ये अवर्माणः**=जो कवचरहित हैं, **ये च वर्मिणः**=और जो कवचव्यतिरिक्त शस्त्रनिवारक साधन से युक्त हैं, हे **अर्बुदे**=शत्रुसंहारक सेनापते! **हतान् तान् सर्वान्**=तेरे द्वारा मारे हुए उन सबको **भूम्याम्**=इस पृथिवी पर **श्वानः अदन्तु**=कुत्ते खाएँ। २. **ये रथिनः**=जो शत्रु रथी हैं, **ये अरथाः**=जो रथरहित हैं, **असादाः**=जो अश्वादि यानों से रहित पदाति हैं, **ये च सादिनः**=और जो अश्वारूढ़ हैं, **हतान् तान् सर्वान्**=मारे हुए उन सबको **गृध्राः**=गिद्ध **श्येनाः**=बाज और **पतत्रिणः**=चील-कौवे आदि पक्षी **अदन्तु**=खाएँ।

भावार्थ—'कवचधारी, बिना कवचवाले, रथी, अरथ, पदाति व घुड़सवार' सभी शत्रुसैनिक रणांगण में मृत होकर कुत्तों, गिद्धों, बाजों व चील-कौवे आदि का भोजन बनें।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**त्रिषन्धि:** ॥ छन्द:—**ककुभुष्णिक्** ॥

शत्रुसेना का पूर्ण पराजय

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्। विविद्धा ककजाकृता॥ २५॥

१. **आमित्री सेना**=शत्रुसेना हमारी सेना को प्राप्त करके **वधानाम्**=हनन-साधन आयुधों का **समरे**=(सम्-अर) संगमन होने पर **विविद्धा**=विविध शस्त्रपातों से मारी हुई **सहस्रकुणपा**=असंख्यात शवों से युक्त हुई-हुई **ककजाकृता**=(खण्डश: कृता, Mutilated आप्टे) टुकड़े-टुकड़े की हुई **शेताम्**=रणांगण में शयन करे।

भावार्थ—हम शत्रुसेना को खण्डश: करके (कुचल कर) रणांगण में सुलानेवाले बनें।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**त्रिषन्धि:** ॥ छन्द:—**प्रस्तारपङ्क्ति:** ॥

शत्रु का 'मर्माहत व धराशायी' होना

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम्।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति॥ २६॥

१. **य:**=जो **अमित्र:**=शत्रु **न:**=हमारी **इमाम्**=इस **प्रतीचीम्**=शत्रु के अभिमुख जाती हुई **आहुतिम्**=युद्धयज्ञ में डाली गई बाण-प्रक्षेपरूप आहुति को (हु दाने) **युयुत्सति**=युद्ध करने के लिए चाहता है, अर्थात् जो हमारे आक्रमण को रोकने का प्रयत्न करता है, उस शत्रु को **अदन्तु**=गिद्ध आदि पक्षी खानेवाले बनें। २. उस शत्रु को, जोकि **सुपर्णै:**=शोभनपतन शरों से **मर्माविधम्**=मर्मस्थलों में विद्ध हुआ है, **दुश्चितम्**=(दु:खै: पूरितम्) दु:खों से जिसका हृदय भरा हुआ है—जिसे चारों ओर संकट-ही-संकट दीखता है—अतएव **रोरुवतम्**=अतिशयेन विलाप कर रहा है, **मृदितम्**=जो युद्ध में चूर्णीभूत (पिसा-हुआ) हो गया है, और **शयानम्**=भूमि पर लेट गया है—धराशायी हो गया है, ऐसे शत्रु को गिद्ध आदि पक्षी खा जाएँ।

भावार्थ—जो हमारे शरप्रक्षेप के विरोध में युद्ध करना चाहता है, वह मर्माहत होकर धराशायी हो जाए और गिद्धों का भोजन बने।

ऋषि:—**भृग्वङ्गिरा:** ॥ देवता—**त्रिषन्धि:** ॥ छन्द:—**अनुष्टुप्** ॥

त्रिषन्धिना वज्रेण

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम्।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना॥ २७॥

१. **देवा:**=शत्रुओं को जीतने की कामनावाले योद्धा युद्धयज्ञ में **याम्**=जो बाणप्रक्षेपरूप आहुति **अनुतिष्ठन्ति**=प्रदान करते हैं, **यस्या:**=जिस आहुति की **विराधनम्**=विराद्धि—मोघवीर्यता—असफलता **नास्ति**=नहीं है **तया**=उस आहुति से **इन्द्र:**=शत्रुविद्रावक राजा **वृत्रहा**=राष्ट्र के घेरनेवालों का नाशक होता हुआ **त्रिषन्धिना**='जल, स्थल व वायु'—तीनों सेनाओं से मेलवाले **वज्रेण**=गतिशील व वज्रसंहनन मुख्यतम सेनापति के द्वारा **हन्तु**=शत्रुओं को नष्ट करे।

भावार्थ—शत्रुविद्रावक राजा वज्रतुल्य दृढ़शरीरवाले सेनापति के द्वारा बाणों की प्रक्षेपरूप आहुति से शत्रुओं को नष्ट कराए।

॥ इत्येकादशं काण्डम् ॥